Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

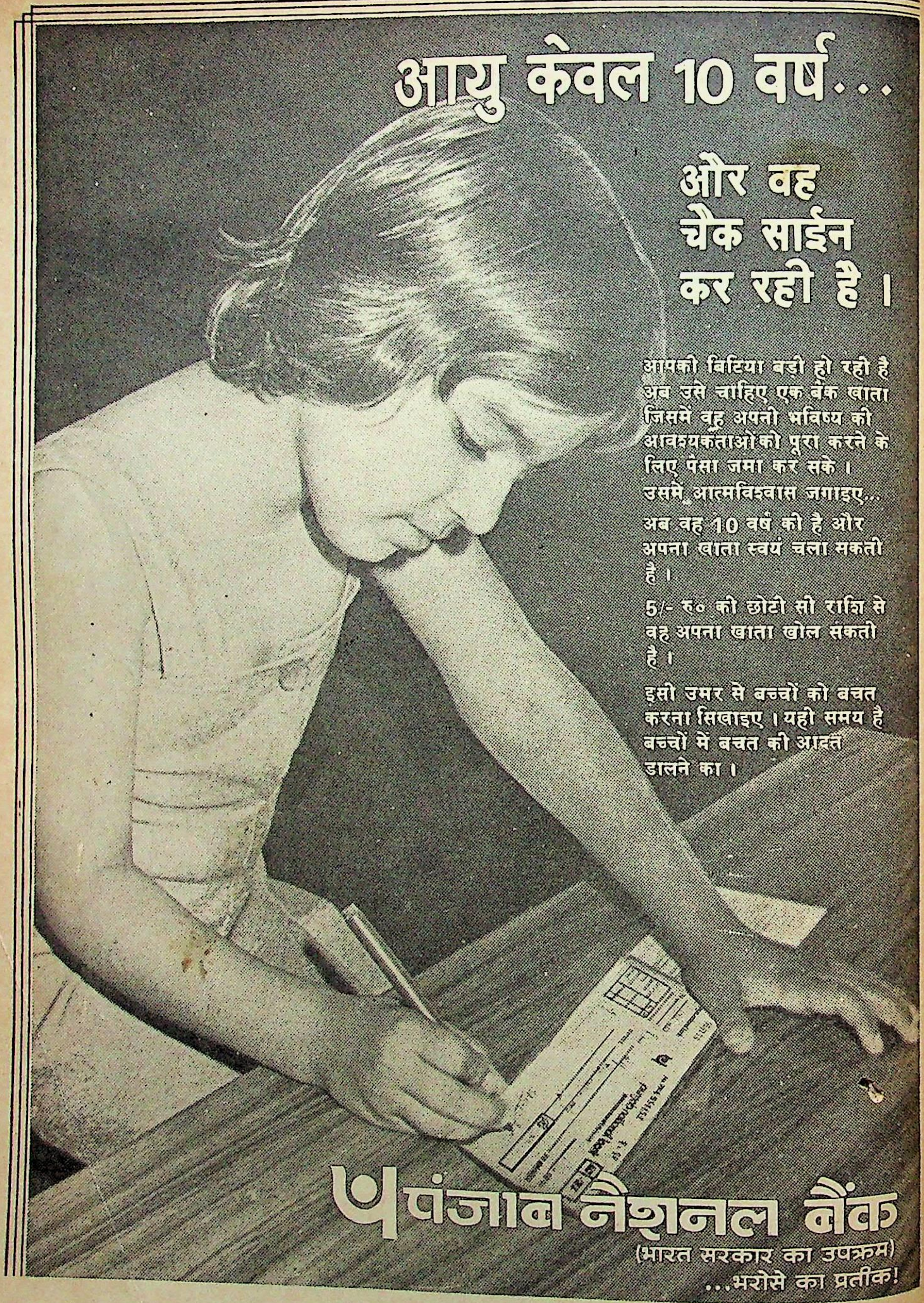

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुघड़ गृहिणी की पहचान, अच्छा खाना सजा मकान

क्या आप नहीं चाहते कि आपका ड्राइंग रूम एक आलीशान कोठी के ड्राइंग रूम जैसा ही लगे और वह भी बहुत कम खर्च में !!!

गृहसज्जा पर एक आर्किटेक्ट द्वारा भारत की प्रथम पुस्तक

होम डेकोरेशन गाइड

लेखक अशोक गोयल

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के जाने-माने लेखक एवं मान्यता प्राप्त 'आर्किटेक्ट'

यदि आप नया मकान बनवाने जा रहे हैं या पुराने को ही नया निखार देना चाहते हैं तो इस पुस्तक पर २०/- खर्च करके हज़ारों रुपये की बचत कर सकते हैं

यह कहना गलत है कि गृहसज्जा एक खर्चीला काम है या केवल अमीर लोगों के लिये ही है जबकि वास्तविकता यह है कि इसकी टैक्निकल जानकारी प्राप्त करके आप भी स्वयं

- घर में मौजूद साजो-सामान में ही अपना घर सजा सकते हैं
- बेकार पड़े कोनों एवं सपाट दीवारों को आकर्षक बना सकते हैं
- परदों दीवारों एवं फर्नीचर के रंगों का तालमेल बैठा सकते हैं
- ड्राइंग डाइनिंग व बेड रूम में आकर्षक फ़र्नीचर सैटिंग कर सकते हैं
- और इनमें तथा बाथरूम व रसोई घर में उचित प्रकाश व्यवस्था कर सकते हैं
- सभी कमरों की आवश्यकताओं को देखते हुए उनमें बहुपयोगी अल्मारियां डिज़ायन कर सकते हैं
- सजावट सामग्री जैसे वाल पेपर, मार्बलेक्स व लिनोलियम के फ़र्श, क़ालीन, झाड़-फ़ानूस, फ़िश एक्वेरियम, वेनिशियन ब्लाइण्डस, म्यूरल्स हैण्डीक्राफ्टस बाटिक व आयल पेंटिंग्स, विनेराटेक्स मद्रासी दाना सनमाइका व फ़ारमाइका आदि के निर्माताओं और वितरकों के पते प्राप्त करके सामान सही व किफ़ायती दरों पर ख़रीद सकते हैं

इसके अतिरिक्त अन्यान्य ढेरों जानकारियाँ आपको इस पुस्तक में मिलेंगी।

डबल क्राउन साइज़
पृष्ठ संख्या : 152
प्लास्टिक लेमीनेटिड बहुरंगी टाइटल
सफेद चिकना कागज

मूल्य 20/-
डाकखर्च 4/-

सैकड़ों ब्लैक एण्ड व्हाइट व रंगीन फोटोग्राफ्स तथा रेखा चित्रों से सुसज्जित

VANDANA

पुस्तकें वी॰पी॰पी॰ द्वारा मंगाने का पता-

पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली-110006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे कम क़ीमत में सबसे ज़्यादा सफ़ाई

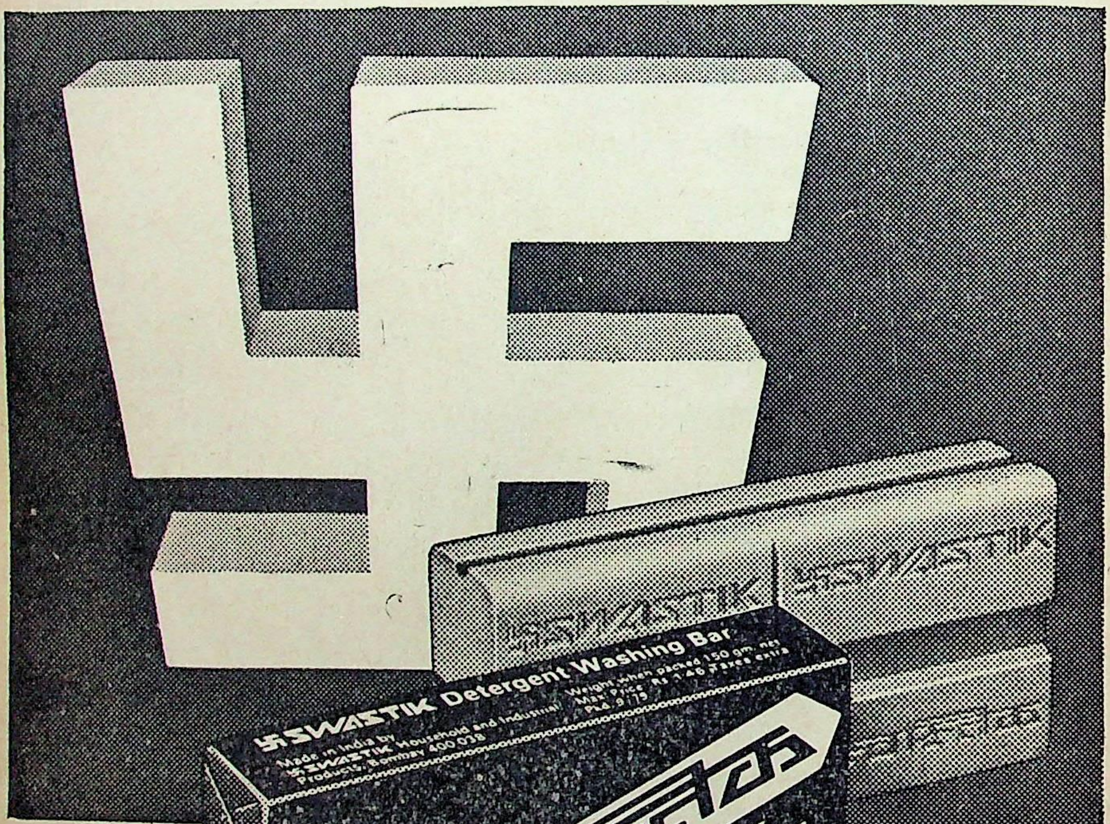

दूसरी सब डिटर्जेण्ट बार से कहीं ज़्यादा अच्छी, कहीं ज़्यादा किफ़ायती और साबुनों से ११/२ गुना ज़्यादा शक्तिशाली!

नीली स्वस्तिक
डिटर्जेण्ट धुलाई की बार
एक बार स्वस्तिक बार... फिर हमेशा स्वस्तिक बार

Shilpi DM 9 A/80 Hin

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी बचत कीजिये—और तब वह हर चीज़ आपकी होगी, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

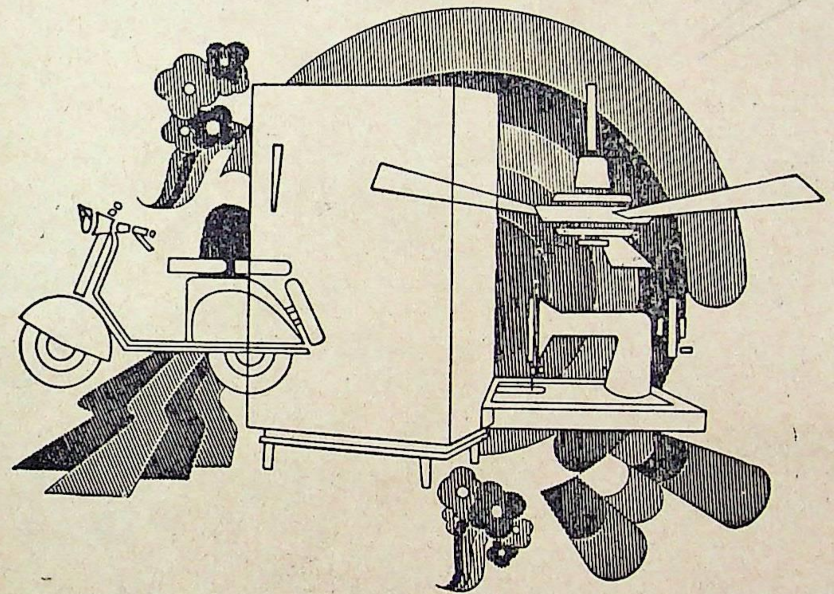

इलाहाबाद बैंक की रेकरिंग डिपॉजिट योजना आपके सपनों को सच करती है।

इस योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें आप खुद तय करते हैं कि हर माह आपको कितना जमा करना है। कम से कम १० रुपये से लेकर अधिक से अधिक १,००० रुपये तक— १ से १० वर्ष तक की अवधि के लिये।

इस प्रकार आप बगैर किसी परेशानी के आसानी से बचत कर सकते हैं। और अन्त में जो आपको वापस मिलेगा, वह आपके जमा किये हुए पैसों से ५०%...या शायद उससे भी ज्यादा हो सकता है। तब आप बड़े आराम से वह सब कुछ खरीद सकेंगे, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

अधिक जानकारी के लिये अपने करीब की किसी इलाहाबाद बैंक की शाखा में पधारिये।

इलाहाबाद बैंक

आपका अपना बैंक

प्रधान कार्यालय : १४ इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता-७०० ००१।

U-AB 3A-HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

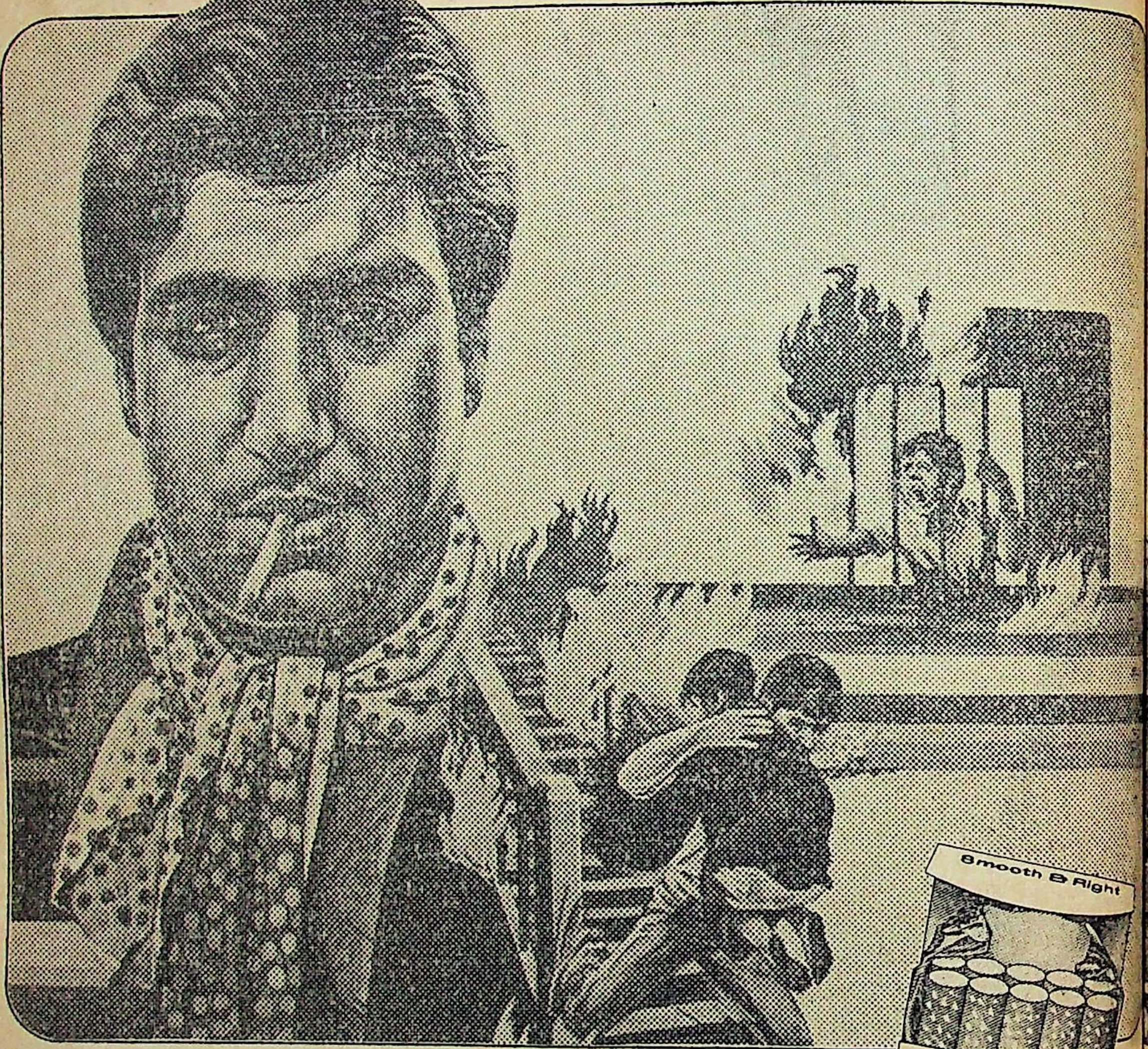

“हम रेड एण्ड व्हाइट पीनेवालों की
बात ही कुछ और है!”

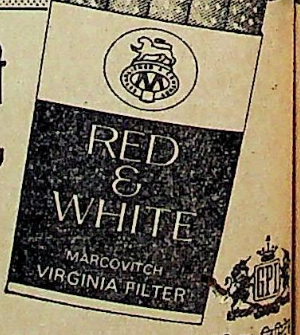

गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटे

वैधानिक चेतावनी: सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
STATUTORY WARNING: CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

Rediffusion/GPI/1141

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 271; 16 से 31 अक्तूबर, 1980

कहानियां

19. कथा विसरजन : लक्ष्मीनारायण लाल
24. रघुनाथ कृपा : गिरिराज किशोर
31. मेरे लिए नहीं : राजी सेठ
45. राम वध : बाला दुबे
48. कब तक : परितोष चक्रवर्ती
53. तालियां : आनंद खेमाणी
55. पगलाया हुआ : किशोर नेपाल
63. जिंदगी के हाशिए पर : रंजन

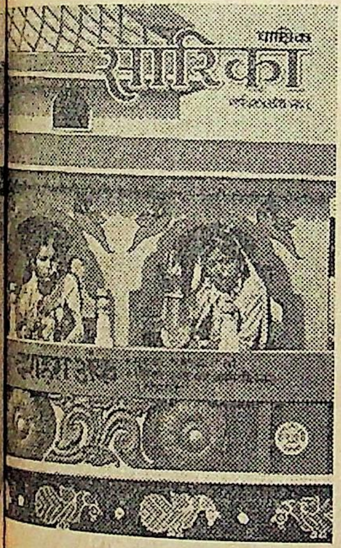

दशहरा अंक

संपादक

कन्हैयालाल नंदन

मुख्य उप-संपादक :

अवधनारायण मुद्गल

उप-संपादक :

रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन

आवरण : सूरज एन. शर्मा

साक्षात्कार

12. श्रीकांत वर्मा से विनोद भारद्वाज की लंबी बातचीत

विशेष

41. रक्ष संस्कृति का अमरीकी रूप—एक पूजो ने 'गॉडफादर' क्यों लिखा? : द्रोणवीर कोहली
61. दंगा (घटना कथाएं) संतोष तिवारी

लघुकथाएं

23. अंतरंग (बंगला) : दीपक राय
29. फांसी, खुद-ब-खुद : वीर राजा
33. रिश्तेदार : लक्ष्मीनारायण वशिष्ठ
34-35. बाबू, अफसर : सनत् मिश्र
38. वर्षा यज्ञ : पूरन मुद्गल
51. सुरक्षित स्थान : अनीस अमरोहवी
54. चमत्कार : यज्ञ शर्मा
56. अपना पहाड़ा : डा. कुंवर बेचैन
66. दो गुजराती लघुकथाएं : विनोद भट्ट

आसपास बिखरी कहानियां

57. अपने-अपने दायरे : अरुण ओसवाल
62. समझदारी : पृथ्वीराज अरोड़ा

अन्य आकर्षण

8. जरिया-नजरिया
9. पाठकों का पन्ना
39. तस्वीर बोलती है : एस. पाल
59. उनने कहा था
68. पखवारे की पुस्तकें : प्रेम जनमेजय
70. हलचल

गजलें

44. शतदल
50. योगेंद्र दत्त शर्मा
52. देवेंद्र गौतम
60. शबाब मेरठी

सारिका

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय मूल्यों के मसीहा

ज़रिया-नज़रिया

हमने अक्सर अपने देश में गिरते हुए मूल्यों, नैतिक संकट और दायित्व-हीनता की बात की है और अपने समय की सच्चाइयों से टकराते हुए कर्मठता के जरिये अपना रास्ता खोजने की तजवीज भी. हम सभी जानते हैं कि इतिहास के जिस दौर से हम गुजर रहे हैं, वह हमें अपने पुराने अनुभवों के सामने नये प्रश्नचिह्न खड़े करके सोचने को विवश कर रहा है. हमें प्रति माह लगभग दो-ढाई सौ कहानियां पढ़ने को मिलती हैं. जरूरी नहीं कि वे अच्छी ही हों, लेकिन एक बात तय है कि उनमें से अधिकांश हमें अपने समय की सच्चाइयों से रू-ब-रू करती हैं. मनुष्य के सपनों, आकांक्षाओं, विवशताओं, कामनाओं और उसकी चिंताओं की तस्वीर देकर एक ऐसे समाज की रचना का उत्स देती हैं जो शोषण के खिलाफ हो, समता की भूमि पर टिका हुआ हो, विघटन और मूल्यहीनता से निजात दे सकने की आशा जगाता हो, जहां आदमी सुकून से जी सकने का विश्वास पा सके. . . इसी बारे में सोचते-सोचते दुनिया के तमाम देशों की हालत पर नजर गयी तो लगा कि--

'एक तेरी ही नहीं, सुनसान राहें और भी हैं.
कल सुबह की इंतजारी में निगाहें और भी हैं.'

भूगोल छोटा हो गया है. इतिहास सिमट गया है. सारी दुनिया के देशों की हालत कमोबेश एक जैसी हो गयी है और हम यहां तक पाते हैं कि मूल्यहीनता के जिस संकट को हम अपने आसपास गहराते देख रहे हैं वह दूसरे मुल्कों में इससे अधिक गहरा है. जिन देशों में महाशक्तियों के राजनैतिक खिलाड़ी अपनी चौपड़ बिछा चुके हैं, वहां का आदमी और भी अधिक त्रस्त और अकेला है. और कौन नहीं जानता कि दोनों महाशक्तियों के अपने देश में आदमी का अपना निजी अस्तित्व सिर्फ एक पुर्जे की हैसियत से कुछ भी अधिक नहीं रह गया. अक्सर कह दिया जाता है कि समय सब कुछ ठीक कर देता है. . . समय की धारा अबाध है. जिसने समय से टकराने की कोशिश की, उसे समय ने चकनाचूर कर दिया!

लेकिन हमने अक्सर पाया है कि समय ने कुछ भी कभी ठीक नहीं किया. ऐसे नियतिवादी फिकरों ने हमारे सोच की जड़ों में सिर्फ मट्ठा डाला है, हमें अकर्मण्यता का शर्बत पिलाया है और अंधेरों में भटकते रहने का रास्ता साफ किया है. मैं यह मानता हूं कि समय ने हमारे साथ छल किया है अगर हमने उस पर भरोसा करके चलने का नुस्खा जिया है. मैं यह मानता हूं कि समय एक महानद है जो जाने कब से बह रहा है और बहता जायेगा. लेकिन हमारे लिए यह महानद बेमानी है अगर उसमें से हमने एक खंड काट कर, ठहरा कर अपने लिए अर्थवान नहीं बनाया, अपनी कौम की जरूरत के अनरूप उसे शक्ल नहीं दी और फिर उसी शक्ल में उसे बहने के लिए मजबूर नहीं किया.

वक्त को शक्ल देना या उसे मजबूर करना आसान नहीं होता, इसकी खास वजह यही है कि हममें उससे टकराने की सामर्थ्य नहीं, जो समर्थ हैं, वे न सिर्फ उससे टकराते हैं बल्कि उसे नये मोड़, नये आयाम और नये अर्थ भी दे जाते हैं. यदि टकराहट सच्ची होती है तो समय रास्ता देता है, जरूर देता है. यह बात राम और रावण के समय भी उतनी ही सच थी जितनी आज है. जब रावण का उत्कर्ष था तो वक्त ने उसे रास्ता दिया था और जब राम का उत्कर्ष शुरू हुआ तो वह उनके सामने खुली किताब की तरह बिछ गया. लेकिन आम आदमी तब भी अंधेरे में था और आज भी अंधेरे में है. हमारे सामने इतिहास ने सिर्फ राम और रावण को जिंदा रखा है, उनके समय के आम आदमी को नहीं. हम उन्हीं के जरिये उस समय के सामान्य आदमी के संघर्ष को आंकते हैं. जरूरी नहीं कि यह आकलन सही हो क्योंकि सत्ता की स्थिति में और आम आदमी की कभी साम्य नहीं हो पाया. स[त्ता] अपने लिए कुछ 'विशिष्ट' बटोरती रही है और ये सुविधा[एं] उस वक्त के आम आदमी ने मु[हैया की] हैं--अपनी कीमत पर, अपने [खून] और श्रम की कीमत पर.

कहते हैं, इतिहास अपने [को] दुहराता है लेकिन हम देख र[हे हैं कि] इतिहास न केवल अपने आप[को दुहरा] रहा है बल्कि ठहर गया है. आज [हमारी] पीठ पर भी अनवरत संघात ह[थौड़ों की] तरह बरस रहे हैं और हम, हैं कि [अपने] खड़े होने की जगह तलाशने की [दौड़] में पिसे जा रहे हैं. इस जद्दोज[हद की] दौड़ में. . . हम उन सभी के सा[थ हैं जो] इस दौड़ में पसीने-पसीने हैं, हांफ[रहे हैं] मगर दौड़ रहे हैं, समय की धारा [के] खिलाफ उसकी सतह से चाहे [न] सही, ऊपर उठकर धारा को [मोड़ रहे] हैं. . . उन मानवीय मूल्यों के म[सीहाओं] को शतशत नमन्, जो भले ही म[र गये हों] सही, आग में कूद तो रहे हैं. जनाब शमीम फारूकी की यह ग[ज़ल] है जो अग्निपुत्रों की मजबूरी औ[र संघर्ष] की साक्षी है और आज के आम आ[दमी की] तकलीफों का दस्तावेज है--

हमराह चल रहा था मगर देख[ता न था]
जैसे कि वह कभी का मेरा आश[ना न था]
सारे बदन पे आग की लपटें ...
दरिया में कूदने के सिवा रास्[ता न था]
हम अपने गमकदे से निकलते तो ...
ताले पड़े हुए थे कोई दर खुला ...
कितना अज़ीम शख़्स है हर गम ...
यूं हंस रहा है जैसे कभी कुछ हु[आ न था]
एक दूसरे से दूर रहे हम त...
वैसे हमारे बीच कोई फ़ासला ...
ख़ाबों के पर जले हुए बिखरे ...
अखबार कह रहा है कोई घर ज...
वह दिन भी याद है कि इसी ...

मैं खो गया था और कोई ढूंढ...

कन्हैयालाल न...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिराक साहब से पूछिए

'जानवर और जानवर' जैसे साहस-पूर्ण स्वर के लिए आप बधाई के पात्र हैं, परंतु जनाब फिराक गोरखपुरी से उमाकांत मालवीय का साक्षात्कार काफी अरुचिकर लगा. फिराक साहब एक अच्छे शायर हो सकते हैं, मगर एक अच्छे हिंदुस्तानी नहीं. जिसकी नजरों में 'दुनिया की डर्टियेस्ट लिपि और बदबूदार ज़बान (यदि मुंह में ही बदबू भरी हो तो उस मुंह से निकलने वाली हर ज़बान बदबूदार ही होगी.) अवैज्ञानिक ज़बान नागरी लिपि और हिंदी है.' ऐसे व्यक्ति का साक्षात्कार आपने हिंदी की पत्रिका 'सारिका' में छापकर 'सारिका' का भी अपमान किया है. ज़रा, इन फिराक साहब से पूछिए तो कि संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों की श्रेणी

पाठकों का पत्र

में आने वाले महाकवि तुलसीदास किस विश्वविद्यालय से अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करके आये थे? सूर, कबीर, फिराक साहब की तरह अंग्रेजी नहीं जानते थे फिर भी उनसे बहुत . . .बहुत ऊंचे थे.

▣ शैलेंद्र, सिभावली, गाजियाबाद.

घूंघट से मूल्यवृद्धि

आपका इस बार का संपादकीय वास्तव में एक ललकार है, जो लोग यहां पर रहकर 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाते हैं, वे भारतीय नहीं, अपितु देशद्रोही हैं. उनके साथ देशद्रोहियों जैसा बर्ताव होना चाहिए.

मुखपृष्ठ एक बार फिर आकर्षण का केंद्र रहा. ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किशोरी घूंघट में झांककर यह देख रही हो कि मूल्यवृद्धि का क्या असर पड़ा.

▣ राजेंद्र 'नीर', चौपुला, बरेली

बंधुवर,

आपके प्रतिष्ठित और उतने ही लोकप्रिय पत्र के माध्यम से मैं आपके विशाल पाठक-समाज तक अपना एक आवश्यक निवेदन पहुंचाना चाहता हूं. कृपया इसे स्थान देकर अनुगृहीत करें.

प्रेमचंद-साहित्य के एक सुलभ जन-संस्करण की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाये, कम है. समय-समय पर इसकी मांग भी पाठकों की ओर से उठती रही है. अतः प्रेमचंद जन्मशती के इस वर्ष में, अलग-अलग छोटी बड़ी पुस्तकों के रूप में बिखरे हुए समस्त प्रेमचंद-साहित्य को एक आकार-प्रकार की रचनावली के बारह बड़े-बड़े खंडों के रूप में प्रकाशित करने की योजना है. उसका कार्यारंभ इसी वर्ष हो जायेगा.

कहने की आवश्यकता न होगी कि इन साठ वर्षों में, जब से प्रेमचंद की पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित होना शुरू हुई, लापरवाह कंपोजीटरों और विद्वान प्रूफरीडरों की कृपा से, उनका पाठ उत्तरोत्तर अशुद्ध होता गया. इसलिए अब जब यह साहित्य नये रूप में प्रकाशित होने जा रहा है, सबसे पहला काम उस पाठ को शुद्ध करना है, ताकि यह नया संस्करण सुलभ होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी हो. दुर्भाग्यवश दो-एक खंडित पांडुलिपियों को छोड़कर, पुस्तकों की पांडुलिपियां नहीं हैं, जिनको आधार बनाकर पाठ को शुद्ध किया जा सके. अतः सबसे पहले प्रथम संस्करणों का ही सहारा लेना पड़ेगा. आप सभी बंधुओं से करबद्ध निवेदन है कि आपके पास या आपकी जानकारी में जहां भी प्रेमचंद की जिन पुस्तकों के प्रथम संस्करण उपलब्ध हों, उनकी सूचना मुझे देकर कृतार्थ करें.

● अमृत राय
18 न्यायमार्ग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

यह कौन-सी भारतीयता है?

सारिका अंक : 268 में प्रकाशित 'फिराक' साहब के साक्षत्कार पर कुछ बातें कहना जरूरी समझता हूं. साक्षात्कार में फिराक साहब ने बड़े खुले ढंग से अपने विचार रखे हैं. इंटरव्यू प्यारा है. उनकी शायरी के प्रति हमेशा से मुझे श्रद्धा रही है, लेकिन हिंदी के आधुनिक साहित्य के प्रति उनका पूर्वाग्रह बहुत पुराना है, जिसके कारण उन्होंने भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी और मैथिलीशरण को 'भारतीयता का दुश्मन' कहा है. वे भारतेंदु जो 'रसा' के उपनाम से उर्दू कविता भी लिखते थे. वह कौन-सी भारतीयता है, जिसके दुश्मन मैथिलीशरण भी हैं?

आज से लगभग 28–29 वर्ष पहले, गोरखपुर के एक कालेज में, अपने भाषण में उन्होंने प्रसाद, निराला, महादेवी आदि के विषय में भी कुछ अनुचित बातें कह डाली थीं, तब पूरी शालीनता, परंतु शक्ति के साथ, मुझे उनका प्रतिवद करना पड़ा था. उनकी हिंदी भाषा के विषय में उक्त धारणाओं और मंतव्यों का कभी डा. राम विलास शर्मा ने युक्ति-युक्त ढंग से उत्तर दिया था. वह लेखमाला काफी रोचक रही थी. इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा.

▣ कृष्ण बिहारी, नयी दिल्ली

थाली में छेद करने वाले

सितंबर, प्रथम अंक में संपादक का 'ज़रिया नज़रिया' पढ़ा. मेरे अपने विचार से कोई भी हिंदुस्तानी चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, 'ज़रिया नजरिया' में व्यक्त विचारों से असहमत नहीं होगा. हां, फिरका-परस्त जरूर नाराज हो सकते हैं.

मैं गांव का रहने वाला हूं. मैंने स्वयं देखा है कि इस देश का आम हिंदुस्तानी हिंदू या मुसलमान एक दूसरे के प्रेम से बंधा भाई-चारे के साथ रहता है. उसके दिमाग में कभी भी एक दूसरे का खून बहाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खयाल नहीं रहता, क्योंकि वह जानता है कि 'खून, खून होता है, न हिंदू होता है, न मुसलमान होता है.' उसी तरह वह जानता है कि जानवर, जानवर होता है, इंसान नहीं और देश की तरक्की उस मुल्क के वासी इंसानों से होती है, जानवरों से नहीं.

तब प्रश्न यह उठता है कि आखिर जानवरों की खातिर इंसानों का खून क्यों बहाया जाता है? आखिर इसका जिम्मेदार कौन है? आखिर इन दंगों में बेगुनाह क्यों मारे जाते हैं? मैंने कभी भी आपस में खुदा या भगवान को लड़ते नहीं देखा, पर आज उसके बंदों को लड़ते देख रहा हूं. आखिर इस लड़ाई से. . .मुसलमान बताये कि उसका कौन-सा खुदा और हिंदू बताये कि उसका कौन-सा भगवान खुश हुआ है? हां, यदि कत्ल करना ही है तो फिरका-परस्तों के अंदर छिपे जानवरों को कत्ल करो. अतः आज प्रत्येक अमनपसंद व देश की प्रगति चाहने वाले प्रत्येक हिंदुस्तानी को ऐसे गद्दार हिंदू व मुसलमानों से साव-धान रहना है, जो 'हिंदुस्तान' का खाकर हिंदुस्तान की थाली में ही छेद करना चाहते हैं. साथ ही आज प्रत्येक भारतवासी को ये विचार भी करना है कि यदि हम आपस में लड़ते रहेंगे तो फिर बाहरी खतरे से अपनी आजादी की रक्षा कैसे कर पायेंगे? और अंत में एक प्रश्न का उत्तर स्वतः सबको देना है कि 'जब भारत ही नहीं बचेगा तो हम सब कहां रहेंगे.?'

■ डा. करतारसिंह 'लाहोरी', जबलपुर.

गुजराती पाठक

'सारिका' का मैं बहुत पुराना गुजराती भाषी पाठक हूं. गुजरात के एक छोटे से गांव में रहता हूं, जहां अखबार भी बड़ी मुश्किल से कभी कभी देखने को मिलता है. अमृता प्रीतम की अजीत कौर द्वारा ली गयी मुलाकात बहुत पसंद आयी.

■ करसनदास लोदार, राणीवाड़ा.

अता-पता

हमारे कई पाठकों ने 'मुहब्बत के सफरनामे में जिंदगी के अक्स' के अंतर्गत प्रकाशित (अगस्त, अंक एक) हस्तरेखा विशेषज्ञ उर्मिल शर्मा का पता पूछा था, जो इस प्रकार है—ज्योतिष सदन, एन-1 राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली

ठहरे हुए फिराक

सितंबर का पहला अंक: 'सारिका' फिर बाजी मार ले गयी. 'जानवर और जानवर' बेतरह झकझोर गया. मुरादाबादी हादसे पर इतना मार्मिक और विचारोत्ते-जक संपादकीय तो किसी अखबार में भी पढ़ने को नहीं मिला. दरअसल, अखबार भी आजकल चीजों के इर्द-गिर्द रहने लगे हैं. चीजों के अंदर उतरने का जोखिम वे नहीं उठाना चाहते, ठीक आज की राजनीति की तरह. चीजों में झांकने के जोखिम भरे प्रयास से कतराकर निकल जाने की यह दुष्प्रवृत्ति मुल्क को किस ओर ले जायेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता!

इंसानी दर्द को शिद्दत से महसूस करने वाले महान शायर फिराक गोरखपुरी से बातचीत के साथ छापे गये फिराक साहब के फोटो कुछ माफिक नहीं लगे. एक आध ही सही, उनकी जवानी का फोटो भी आप छाप सकते थे, जो उनके शायर के दमखम के रू-ब-रू होता. सच, ऐसे किसी फोटो के लिए हम तरस कर रह गये. फिराक साहब के शायर का संवेद्य एहसास आज भी वाबस्ता है, पढ़कर खुशी हुई.

लेकिन उनके इस अंतर्विरोध को क्या कहें! एक ओर तो वे तुलसीदास को संसार का महान कवि बताते हैं (जिनके पासंग में कालिदास, गालिब, टैगोर और इकबाल भी नहीं ठहर पाते) और दूसरे सिरे पर जाकर वे हिंदी को संसार की डर्टियेस्ट जबान करार देते हैं, समझ में नहीं आता कि तुलसी और हिंदी किस छोर पर जाकर अलग-अलग हो जाते हैं? सच-सच कहूं, यह सब पढ़कर फिराक हमारी नजरों में न छोटे हुए, न बड़े. बस, वे एक मुकाम पर आकर ठहर गये लगते हैं.

■ सवाईसिंह शेखावत, उदयपुर वाटी (राजस्थान)

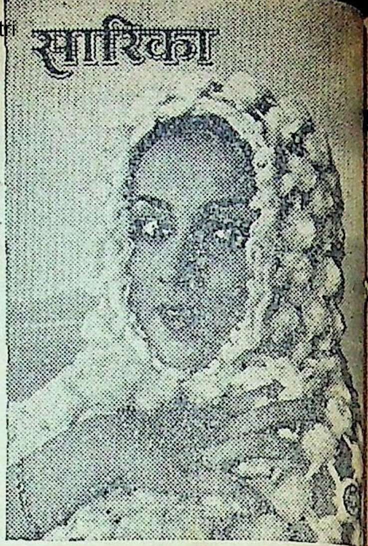

सारिका की बजाय तारिका

अपने पंद्रह पैसे इसीलिए बर्बाद कर रहा हूं कि अपने मन का गुबार निकाल सकूं. कमलेश्वर के संपादनभार छोड़ने के बाद 'सारिका' की जो दशा की है आपने, दुख होता है. (वैसे कुछ विशेषांक इसके अपवाद हैं) अधिकतर कहानियां आदमी के संघर्ष से कोई संबंध नहीं रखतीं. 'तस्वीर बोलती है' स्तंभ बहुत अच्छा है. साक्षात्कार भी दिलचस्प रहते हैं.

और हां, मुखपृष्ठ पर छपी खूबसूरत युवतियों की रंग-बिरंगी तस्वीरों को देख सिने-पत्रिका का भ्रम हो जाता है. अच्छा हो, पत्रिका का नाम 'सारिका' से बदलकर 'तारिका' रख लें.

■ वीरेंद्र नागर, कलकत्ता

सबसे भारी शेर

'सारिका' ने दुष्यंत के बाद जो हिंदी गजल या कि नयी गजल छापने का सिलसिला चलाया था, स्वागत योग्य था, किंतु दुष्यंत की गजलों के बाद कमलेश्वर के जमाने में ही घटिया और वचकानी गजलें छपने लगी थीं और वह सिलसिला अभी भी जारी है. अब कुछ सुधार हुआ है, क्योंकि आप शायद गजलों को देखने का कष्ट कर रहे हैं. हाल के एक अंक में बालस्वरूप राही की तीन गजलें और रमेश यादव की एक गजल छापी है. रमेश की गजल का तीसरा शेर **जड़े फ्रेम में टंगे हुए हैं ब्रह्मचर्य के नियम, इसी फ्रेम के पीछे चिड़िया गर्भवती हो जाती है'**, चारों गजलों में सबसे भारी शेर हुआ.

■ ज्ञान प्रकाश, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्सी हथियाने वालों की साजिश

'सारिका' के सितंबर (प्रथम) अंक में 'जानवर और जानवर' के अंतर्गत नजरिये के जरिये जो बात आपने कही है, वह बहुत महत्व की है. इतनी बेबाकी से वह बात एक साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से कही, यह और बड़ी बात है, क्योंकि मैं देख रहा हूं कि इस देश की पत्रकारिता इस स्थिति को भी अपनी राजनीति के नजरिये से देख रही है, अन्यथा पत्रकारों द्वारा ऐसी गुंडागर्दी और राष्ट्रविरोधी कार्यवाहियां करने वाले वर्ग के विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक कदम के परिप्रेक्ष्य में उसके संप्रदाय को आधार बनाकर पुलिस और सेना में उसके लिए आनुपातिक आरक्षण की बात नहीं कही जाती. क्या इस धर्मनिरपेक्ष देश में विशेष सुविधाएं उसी अल्पसंख्यक वर्ग के लिए हैं, जिसके धर्म के नाम पर इंडोनेशिया से अफ्रीका तक फैले अनेक देश हैं, जो उसके लिए ज्यादा 'अपने' और 'प्रिय' हैं? बहुसंख्यकों के धर्म का देश इस संसार में कौन-सा है? मैं सांप्रदायिक बात नहीं कर रहा हूं, एक सत्य को ही उद्घाटित कर रहा हूं. मैंने किसी पत्र में नहीं पढ़ा कि किसी जिम्मेदार पत्रकार ने लिखा हो कि राष्ट्र के स्वतंत्रता दिवस पर राष्ट्र की राजधानी में राष्ट्रध्वज का अपमान करते हुए जिन लोगों ने 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाये, उन्हें बिना किसी अधिक छानबीन के उसी समय इस देश से बलपूर्वक निष्कासित कर दिया जाना चाहिए था. देश के सम्मान की रक्षा निर्मम बनकर ही की जा सकती है, यह बात हमारी समझ में आनी चाहिए. इसीलिए 'सारिका' के वक्तव्य का महत्व है और इसलिए भी कि जुल्म और जहालत के खिलाफ आवाज बुलंद करने यदि साहित्य खड़ा हो जाये तो समझ लेना चाहिए कि उनका अंत निकट आ गया है.

बात इससे भी आगे जाती है. क्या यह सोचने का कारण नहीं कि संप्रदाय, भाषा, जातीयता, प्रांतीयता आदि के विविध स्तरों पर व्यापक रूप में फिरकापरस्ती चलने देने में उस देशव्यापी कुतंत्र का हाथ है, जिसने 'तंत्र' को 'लोक' के शरीर पर कोढ़ की तरह जम जाने की सुविधा दी है और नित नवीन पैदा होने वाले राजनीतिक दलों को इसी कोढ़ में खाज की तरह फूटने के अवसर प्रदान किये हैं? विदेशों से पैसा और हथियार प्राप्त कर हमारे ही हाथ-पैर काटने वालों को खुश रखने के पागलपन के कारण ही उन्हीं की कौमवालों के देशों में स्पष्टीकरण देने के लिए प्रतिनिधि भेजने की आवश्यकता अनुभव की जाती है. अजीब बात है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हम एक धर्म विशेषवालों के राष्ट्रों को खुश करने के पीछे दीवाने हैं, जबकि वे धर्म के नाम पर हमसे कहीं भी समझौता करने को तैयार नहीं, कूटनीतिक स्तर पर हम एक अन्य देश को रिझाने में लगे हैं. जबकि उसे केवल अपने स्वार्थ से मतलब है और आदर्श के स्तर पर हम सारी दुनिया को प्रभावित करना चाहते हैं, जबकि उसके लिए आदर्श महज हाथ का रूमाल है.

हमें दुनिया को बता देना होगा कि सम्मानहीन समझौते पर हमें न तेल चाहिए, न शस्त्रास्त्र और न समर्थन. इसके बिना भी राष्ट्र जिंदा रह सकता है, फल-फूल सकता है, आंख दिखाने वाले की आंख निकाल सकता है और हाथ उठाने वाले का हाथ कलम कर सकता है. इस्राइल का उदाहरण हमारे सामने है.

विशाल जनशक्ति हमारे पीछे है, सभी प्रकार का बुद्धि-बल कौशल और साधन हमें उपलब्ध हैं और कुछ कर डालने के लिए हम कटिबद्ध हैं, परंतु. . .एक बहुत बड़ा 'परंतु' इस सब के साथ जुड़ा हुआ है. . .परंतु भारतमाता के सिंहासन को काट कर उसके टुकड़ों से अपनी कुर्सी पक्की करने वालों की साजिश पर हमारा वश नहीं है.

■ आदर्श सक्सेना, बीकानेर.

नेताई जरिया-नजरिया

'सारिका' 1 सितंबर के 'ज़रिया-नज़रिया' में 'जानवर और जानवर' जैसे करंट टॉपिक के प्रकाशन पर साधुवाद.

एक बात परंतु उसी समय से मेरे दिमाग में 'पक' रही है. आम आदमी को आखिर कब तक अंधकार में रखा जायेगा. एक तरफ आप धर्मनिर्पेक्षता की गोहार मचाते हैं तो दूसरी तरफ आरक्षण लगा देते हैं. सर्टिफिकेटों में जाति व धर्म के खाने बांट देते हैं. अदालतों में सच्चाई उकेरवाने के लिए गीता व कुरान का प्रयोग करते हैं.

'जानवर और जानवर' जैसे नेताई भाषण से सांप्रदायिक दंगे कम नहीं होंगे. एक अदद कुत्ता, बिल्ली, गाय या सुअर दंगों का कारण नहीं. दरअसल, उन जानवरों के प्रति मन में बोयी गयी घृणा दंगों का कारण है.

अलगावों की इस नफरत को मिटाने के लिए मुझे इतिहास के उन पन्नों को आने वाली पीढ़ी से छिपाना होगा, जिसमें महमूद गज़नवी द्वारा सोमनाथ मंदिर के लूट विवरण अंकित हैं. उन बातों को दिमाग से निचोड़ देना होगा, जिसके कारण पाकिस्तान बना है. देश में होने वाले सभी धार्मिक पर्वों को समाप्त करना होगा, जो आदमी को अलग-अलग खानों में बांटा करते हैं.

नंदनजी, नहीं तो यह दंगे उस समय तक होते रहेंगे, जब तक मस्जिद में लाउड-स्पीकर पर हुई गोहारिया अजान से किसी हिंदू का बीमार पुत्र दहलकर मृत्यु के गले लगता रहेगा. रात भर चलने वाले कीर्तन से मुसलमान रोगी की नींद हराम होती रहेगी. धर्म के ठेकेदार मुल्ला, पंडित इस देश की घिनौनी राजनीति के हाथों बिकते रहेंगे.

उस समय तक मरने वाला इंसान 'इंसान' नहीं, सिर्फ हिंदू एवं मुसलमान बना रहेगा. इसे आप का नेताई बास लिये भावुक 'ज़रिया-नज़रिया' समाप्त नहीं कर सकता.

■ शकील रिजवी, बलरामपुर

बधाई

'सारिका' में प्रस्तुत 'सेवामीटर' के लिए मेरी बधाई स्वीकार करें.

■ श्रवणकुमार गोस्वामी, रांची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार

श्रीकांत वर्मा से विनोद भारद्वाज की लंबी बातचीत

छठे दशक के उत्तरार्ध में कहानी और कविता के क्षेत्र में एक नाम काफी तेजी से उभरा था. यह नाम था श्रीकांत वर्मा का. एक दशक से कुछ अधिक तक साहित्य में सक्रिय रहने के बाद श्रीकांत वर्मा सक्रिय राजनीति में भी उतर आये. इसके बाद इनकी लेखनी की गति तो अवश्य धीमी हुई, पर इनकी साहित्यिक छवि धुंधलायी नहीं. श्रीकांत वर्मा से यह बातचीत की है कवि-पत्रकार विनोद भारद्वाज ने, जो इसके पूर्व निर्मल वर्मा (पूर्णांक 220), कुंवर नारायण (पूर्णांक 242) तथा रघुवीर सहाय (पूर्णांक 251) से भी 'सारिका' के लिए बातचीत कर चुके हैं. विनोद भारद्वाज के अ... "सारिका के इस स्तंभ की कुछ दूसरी भेंटवार्ताओं की तरह कवि-कथाकार-आलोचक और राज्यसभा सदस्य श्रीकांत वर्मा से भी मेरी यह बातचीत एक खास फ्रेमवर्क में हुई है, जिसमें एक लेखक की दुनिया कई स्तरों पर अनौपचारिक ढंग से (बिना सनसनीखेज हुए : एक गंभीर धरातल पर) सामने आ सके. उद्देश्य यह नहीं रहा कि हर बात पर बह... जाये—उद्देश्य रहा कि रचनाकार का मन अपने ढंग से खुलता चला जाये. भेंटकर्ता की मुख्य भूमिका संकेत चिह्न बनाने की रही. श्री... से मैं पहली बार 1967 में मिला था—अपने कॉलेज के दिनों में. 1974 में 'दिनमान' में आने से पहले लखनऊ से जब भी दिल्ली आना... हमेशा उनसे लंबी मुलाकातें होती रहीं. यह बातचीत जून-जुलाई, 198... में कुछ प्रारंभिक बैठकों के बाद टेप पर दो हिस्सों में हुई."

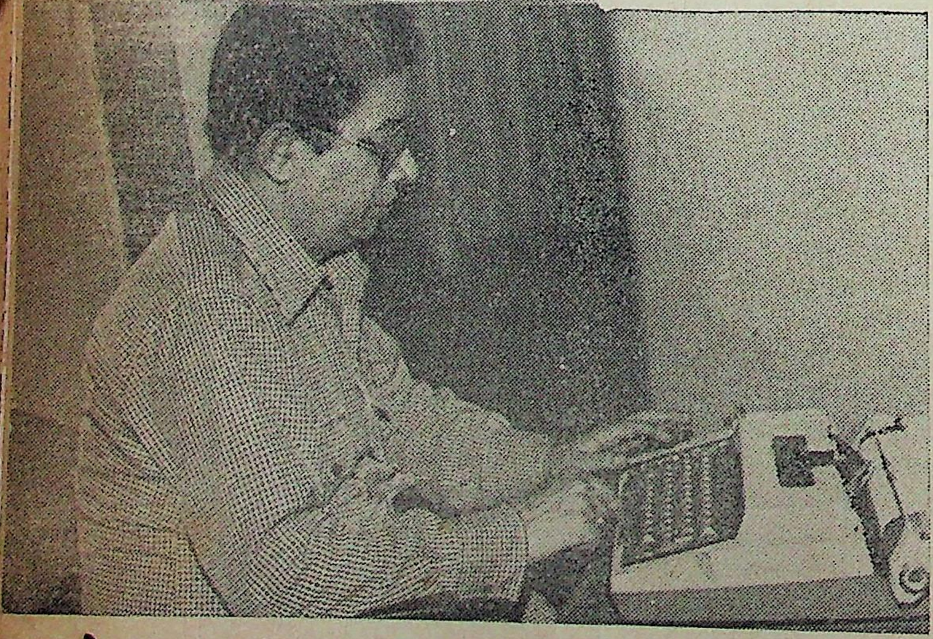

छाया : धर्मवीर जयनर

अभी हाल में आप चीन की... से लौटे हैं. पिछले दस सा... आपको विदेश जाने का... मौका मिलता रहा है. इन ... के बाद दुनिया आपको कैसी... है? अपनी और बाहरी दोनों...

अगर आपके सवाल को दर्शन के ... पर मैं ले जाऊं तो अंत में आदमी की ... बहुत छोटी रह जाती है. इंसान के ... सुनने—उसके दृश्यलोक और श्र... की परिधि जितनी भी व्यापक हो, ... का जीने से प्राप्त संतोष का क्षे... सीमित होता है. हर जगह आदमी ... है. समाजवादी देशों में भी इस धार... खंडन हो चुका है कि मनुष्य में ... परिवर्तन किया जा सकता है. 'सु... मैन' की धारणा बेकार हो चुकी है... वादी या समाजवादी देश के मनुष्य...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियति में परिवर्तन तभी होगा, जब देश की मानसिक आबोहवा भी बदले

□ श्रीकांत वर्मा

होने की दशा की शर्तों में परिवर्तन में ही है. भय से, आतंक से उसकी कई सामाजिक कमजोरियों पर बुराइयों का 'इलिमिनेशन' जरूर हो गया है. मैं समझता हूं, आदमी हर जगह आदमी है—उतना ही कमजोर, उतना ही महान, उतना ही दुःसाहसी और उतना ही विनम्र. इंसान केवल सभ्यताओं के उत्थान-पतन का गवाह या हिस्सेदार बनकर रह सकता है, लेकिन इंसान से और दुनिया से यह उम्मीद करना कि हमारे जीवन काल में कोई नया इंसान पैदा हो जायेगा, मुझे ठीक नहीं लगता. हिंदुस्तान की परिस्थितियों से कई बार मुझे बहुत चिढ़ होती है, लेकिन जब भी मैं बाहर जाता हूं तो मुझे लगता है कि अगर हममें कुछ खास बुराइयां हैं तो दूसरे देशों में दूसरी ही बुराइयां हैं. इसलिए केवल स्थान-परिवर्तन से मनुष्य में परिवर्तन की बात एक सरलीकरण करना होगा.

लेखन प्रक्रिया की 'पेरिस रिव्यू' की प्रसिद्ध भेंटवार्ताओं की शैली हालांकि काफी रूढ़ हो चुकी है—विकृत भी—फिर भी इस भेंट में आपकी लेखन प्रक्रिया के बारे में कुछ जानना चाहूंगा. क्या आप खूब लिखते हैं और उस पर काफी काम करना पसंद करते हैं? अपनी रचना—खास तौर से कविता को प्रकाशन से पहले क्या आप मित्रों को दिखाना या सुनाना पसंद करते हैं?

नियमित रूप से लिखना मेरे लिए कभी संभव नहीं हो पाया. कोशिश बहुत की—कई प्रकार के 'स्वांग' किये—कई तरह के बाहरी प्रसाधन जुटाने की कोशिश की कि नियमित लिख सकूं, पर उसके लिए आवश्यक अनुशासन कभी नहीं बना पाया. आगे के बारे में कह नहीं सकता—कोशिश जरूर कर सकता हूं. बीच-बीच में मैं लिखता रहा और यह जरूर है कि जो भी लिखता हूं, उसे कई बार लिखता हूं. कोई भी कविता जो मैं लिखता हूं, उसे मैं बार-बार लिखता हूं. तीन-चार बार लिखने के बाद अगर कोई रचना औसत दिखने लगे तो मैं उसे फेंक देता हूं. यह हो सकता है कि उस रचना के पीछे का अनुभव या आवेग फिर किसी दूसरी रचना में व्यक्त हो जाये—बेहतर रूप में. जब तक किसी रचना के बारे में उसके 'फॉर्म' के बारे में मुझे यह न लगे कि वह दूसरों को खींचेगी, मोहित करेगी, जादू उन पर असर करेगा, तब तक मैं उसे छपने नहीं देता. जहां तक रचना को सुनाने का सवाल है—अपने आरंभिक काल में—63-64 तक अपनी कविताएं दूसरों को सुनाने का बहुत चाव होता था. तब अक्सर जब मैं कोई कविता लिखता था तो तत्काल उसे किसी मित्र के पास जाकर सुनाने की इच्छा होती थी. जब मैं बिलासपुर में रहता था तो नागपुर जाकर मुक्तिबोध को अपनी रचनाएं सुनाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता था. और जब उनसे दाद मिलती थी या जब वे संतुष्ट हो जाते थे तो संतोष मिलता था. पिछले दस-पंद्रह सालों में इस तरह से सुनाने का मोह नहीं रह गया है. शायद यह एक तरह की कुंठा है. शायद इसका कारण यह हो कि मैंने देखा कि कविताएं बहुत कम लोगों तक पहुंचती हैं. कविता एक अप्रासंगिक-सी चीज हो गयी है—खास तौर से इस बोर्जुआ समाज में. जो भी कारण हो, बहरहाल यह मानसिक स्थिति अब बन गयी है. कविताएं अब मैं सुनाता नहीं.

हो सकता है, इसके पीछे इस तरह के कारण हों कि शुरू में—खास तौर पर किशोरावस्था में कवि या रचनाकार में जो उत्साह और उतावलापन होता है—अपनी रचना को सुनाने का, वह बाद में परिपक्वता आ जाने पर कुछ कम हो जाता हो....

इसके पीछे मुझे 'परिपक्वता' वगैरह नहीं दिखती, क्योंकि कविता को सुनाना एक सहज प्रवृत्ति है. बनावटीपन तो कविता न सुनाने में है, सुनाने में नहीं, क्योंकि कविता की रचना करनेवाला अक्सर एक किशोर मन ही होता है, चाहे उसके पीछे आपका आवेग कितना ही परिपक्व हो या कितनी ही उसके पीछे उम्र की सीख हो. जब कविता के पीछे का किशोर मन समाप्त हो जाता है तो समझिए कविता भी समाप्त हो जाती है. सुनाने में किसी तरह के उतावलेपन को मैं नहीं देखता, बल्कि मैं समझता हूं, जो चीजें सहज थीं, जिंदगी में वे कम होती जा रही हैं.

श्रीकांतजी, अपने बचपन और प्रारंभिक दिनों के बारे में कुछ बताइए, चूंकि इस बारे में हमारे पास कोई खास जानकारी नहीं है. वे क्या चीजें थीं, जो आपके जीवन में महत्वपूर्ण रहीं?

पहली बात तो यह कि मैं मध्यवर्ग, लेकिन सामंती संस्कारों वाले परिवार में पैदा हुआ. इससे मेरी मानसिक बनावट उसी ढंग से हुई—आज भी मेरे मन में वैसे ही भय, आशंकाएं इत्यादि हैं, जो एक तरह के सामंती परिवारों में होती हैं. मेरे पिताजी वकील थे—उससे पहले मेरे दादा वकील थे. उनकी अच्छी-खासी जमीन-जायदाद थी. नौकर-चाकर थे. आराम और सुविधा-प्रियता का वातावरण था. आज भी, इतने संघर्षों के बाद भी, मुझमें उसी तरह की सुविधाप्रियता है जो कि एक सामंती संस्कारों में जन्म लेने वाले व्यक्ति में होती है. दूसरे, मैं अपने घर में सबसे बड़ा लड़का था. बहुत ज्यादा लाड़-प्यार मिला. बहुत महत्व मिला. मेरे खयाल में इसने भी ऐसी भावना पैदा की कि मैं एक विशिष्ट व्यक्ति बनूं. दूसरों का ध्यान मुझ पर केंद्रित होना चाहिए, मुझे दूसरों से अलग दिखना चाहिए. एक ऐसे व्यक्ति के रूप में मुझे होना चाहिए जिस पर सबकी निगाहें टिकी रहें. अगर मैं बड़ा लड़का न होता तो शायद यह बात न होती.

मैं बिलासपुर में पैदा हुआ था. अब तो खैर वह एक शहर-सा हो गया है, तब वह कस्बा ही था. कस्बे में आदमी की जड़ें ज्यादा गहरी होती हैं. महानगर में जन्म

• •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेने वाले व्यक्ति का 'एलिनियेशन' जितना जल्दी होता है, उतना जल्दी गांव या कस्बे के व्यक्ति का नहीं होता. कम-से-कम हमारे देश में यह बात आज भी सही है, क्योंकि हमारा जीवन आज भी इतना औद्योगिक नहीं हुआ. इसके बावजूद कि मैं पच्चीस साल की उम्र में दिल्ली आ गया—आज भी मेरी जड़ें परिवार और उसके परिवेश में हैं—बावजूद इसके कि आधुनिकता मेरे लिए 'फेटिश' बन गयी और पश्चिमी माहौल और संस्कृति ने मुझे इतना आक्रांत कर दिया कि उससे उत्पन्न मृत्युबोध ने मुझे दबोच लिया, तब भी मेरी जड़ें अब तक उखड़ नहीं पायी हैं. उसकी वजह यही है कि मैं अत्यंत छोटे कस्बे में पैदा हुआ और उसके संस्कारों से, अच्छा ही हुआ कि मैं छुटकारा नहीं पा सका.

तीसरी बात यह है कि मेरा बचपन जंगलों में बीता. मेरे पिता जमींदार के वकील थे और मेरे ताऊ उस जमींदारी में एक दीवान थे. हमारा इलाका एक जंगली इलाका है. जंगलों से मेरा बहुत साबका पड़ा. करीब 15-16 की उम्र तक मेरा काफी वक्त जंगलों में ही बीता. जंगलों की हरीतिमा या उसके सौंदर्य ने मुझे बहुत ज्यादा अपनी तरफ खींचा. आज भी संगीत, पेंटिंग या स्त्री के सौंदर्य को देखकर मेरे अंदर एक विशाल जंगल—उसका सौंदर्य जाग उठता और बोलने लगता है. जंगलों की अनंतता और अकेलेपन ने भी मेरे अंदर गहरी और स्थायी छाप छोड़ी. जंगल में एक तरह का भय होता है—सिकुड़ता हुआ, थरथराता हुआ. उस भय या रहस्य ने मुझे आकृष्ट किया. मेरी कविताओं में—विशेषकर आरंभिक कविताओं में जंगलों और प्रकृति का असर है. मेरी कविताएं जंगलों का जैसे बयान हैं.

पहले आपने शायद कविताएं ही लिखी थीं. आपने कब लिखना शुरू किया?

1948 में कॉलेज के दिनों में शुरू में मैंने कुछ कविताएं लिखीं, पर उनमें 'मैच्योरिटी' नहीं थी. कुछ विशिष्टता दिखाने के लिए ही उन्हें लिखा, गंभीरता से मैंने 1953 से लिखना शुरू किया. उन दिनों नयी कविता के बीज अलग-अलग शहरों में पड़ रहे थे.

शुरू में आपने किस कविता को पढ़ा—'तार सप्तक' के कवियों को या अन्य कवियों को?

सृजन के क्षण में लेखक के सामने ऐसी कोई मजबूरी नहीं होती. जिस हद तक होगी, उस हद तक उसका लेखन अलेखन होगा. इसलिए प्रतिबद्धता का प्रश्न ही नाहक है.

एक लेखक बनने की चाह या ललक तो मुझमें शुरू से ही थी. सबसे पहले मुझ पर निराला और पंत ने अपनी छाप छोड़ी. हालांकि दिनकर, बच्चन जैसे कवि उन दिनों लोकप्रिय थे, लेकिन इन कवियों ने मुझे इतना प्रभावित नहीं किया कि मैं लिखने की प्रेरणा प्राप्त करूं. फिर 1950 के आसपास मैंने अंग्रेजी कवियों को पढ़ा—एलियट, एजरा पाउंड, डायलन टॉमस आदि को. बहुत ज्यादा कवियों के ग्रंथ तो एक छोटे कस्बे में मिल नहीं सकते थे, लेकिन मुझे एलियट ने बहुत प्रभावित किया. मुझे इन कवियों को पढ़कर लगा कि जैसे कविता का एक नया संसार मिल गया है. वह संसार मुझे नजदीक लगता था. इसके बाद कुछ लोगों ने 'तारसप्तक' का परिचय दिया. उसके कवियों ने मुझे प्रभावित और चकित किया. कुछ वर्षों के बाद 'दूसरा सप्तक' पढ़कर मैं और भी आकृष्ट हुआ, क्योंकि 'तार सप्तक' की तुलना में इसकी भाषा मुझे अधिक समकालीन लगी. मुझे लगा कि मेरे पास एक आत्मीय संसार है, जिसे मैं सुन सकता हूं, समझ सकता हूं.

आपका प्रथम काव्य संग्रह 'भटका मेघ' दिल्ली में आने के बाद छपा. . .

दिल्ली आने से पहले बिलासपुर से 54-55 में मैंने 'नयी दिशा' पत्रिका निकाली थी. उसमें मैंने नये प्रयोगधर्मी रचनाकारों को छापने का ही व्रत लिया था. नयी दिशा का काफी विरोध भी हुआ था. वह एक सहकारी प्रयत्न था, जिसके सिर्फ दो अंक निकले थे. फिर 56 में मैं दिल्ली आ गया. 57 में 'भटका मेघ' छपा, जिसमें कविताएं 54-55 की थीं.

हां, मुझे याद आ रहा है, लखनऊ में अपने विश्वविद्यालय के दिनों में मैंने उसे 'आचार्य नरेंद्रदेव पुस्तकालय' से लेकर पढ़ा था. उ[...] कवर भी एक 'आर्टिस्ट' का था[...] शायद हुसेन. . . .

नहीं, कवर उसका रामकुमार का है. [...] मेरा परिचय दिल्ली आकर ही हुआ था[...] जैसा कि मैंने बताया, हर चीज, जो पर[...] को तोड़ती थी, मुझे आकृष्ट करती [...] इसीलिए रामकुमार से मैंने उनका रेखा[...] मांगकर कवर बनवाया. शायद 'भटका[...] पहला संग्रह था, जिस पर किसी आधु[...] चित्रकार का कवर था.

उस वक्त के दिल्ली के साहि[...] माहौल की क्या खासियत [...] क्या बातें थीं, जिन्होंने आप[...] गहरा असर डाला?

दिल्ली आकर मुझे ऐसा ही लगा, [...] 1910-30 के बीच यूरोप-अमेरिका[...] लेखकों-कलाकारों को पेरिस पहुं[...] लगता होगा. यह सही है कि दिल्ली में[...] दिनों भी (आज भी) अंग्रेजी का बोल[...] था, फिर भी चाहे प्रकाशकों की त[...] में, चाहे जीविका की तलाश में हिं[...] साहित्यकार दिल्ली की ओर खिंचे[...] आ रहे थे. सभी प्रमुख चित्रकार-[...] दिल्ली या तो रहने लगे थे या फि[...] दिल्ली की यात्रा करते रहते थे. उन[...] मैथिलीशरण गुप्त, नवीन, दिनकर, ब[...] अज्ञेय हिंदी के सारे मूर्धन्य कवि [...] यहां थे. उसके अलावा नये साहित्[...] जिन्होंने थोड़ी-बहुत ख्याति अर्जित[...] ली थी, वे भी यहीं थे—नरेश मेहता, [...] वर्मा, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, नेमि[...] जैन, सुरेश अवस्थी इत्यादि. दिल्ली[...] हिंदी वालों की छोटी-मोटी कॉलोनी [...] गयी थी—दिल्ली जैसी वैभवशाली [...] में जैसी भी कॉलोनी बने, आकर्षित [...] ही. तो दिल्ली में आकर मुझे साहित्य[...] के बीच सुख का अनुभव हुआ. बिला[...] में आधुनिक साहित्य नहीं मिलता था[...] न ही वह वेवलैंथ, जिसकी कि मुझे [...] थी. नागपुर में जरूर मुक्तिबोध थे[...] कुछ समय के लिए नरेश मेहता थे[...] फॉर्मेटिव पीरियड में इन मुलाकातों[...] योगदान था, पर दिल्ली आकर मुझे[...] कि मैं भी कुछ हूं और कुछ हो[...] हूं और इस कुछ हो सकने के लिए[...] जो सुविधाएं-सहायता चाहिए, वे दिल्ली[...] मिल सकती हैं. तो जिस विशिष्ट[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

…तलाश थी, जिसके लिए मैं संघर्ष कर …हा था और जिस संघर्ष में मैं पहले भी …केला था और आज तो बिल्कुल ही …केला हो गया हूं—उस तलाश में मुझे …ल्ली आते ही ज्ञान की छटा सी दिखी.

मुक्तिबोध से आपका परिचय तो नागपुर में ही हुआ था. उनसे परिचय के बारे में कुछ बताइए.

…क्तिबोध से मेरा परिचय नागपुर में …954 के आसपास हुआ. उस समय वे …रकारी दफ्तर, सूचना विभाग में काम …रते थे और मेरे मित्र थे रामकृष्ण श्री…वास्तव, जो कवि थे, अब तो उनका …धन हो गया है, वे भी मुक्तिबोध के …त नजदीक थे. उनके माध्यम से मेरा …क्तिबोध से परिचय हुआ. एक मेरे अन्य …त्र थे, जीवनलाल वर्मा 'विद्रोही'. कवि … जो अब भोपाल में हैं. मैं, विद्रोहीजी, …मकृष्ण श्रीवास्तव और मुक्तिबोधजी …ल-डेढ़-साल में बहुत निकट आ गये. बाद मुक्तिबोधजी की प्रेरणा से ही 'कृति' …कली, जिसके वे सलाहकार भी थे. मुक्ति…धजी की कविता ने आरंभ में मुझे थोड़ा-सा आकर्षित किया, लेकिन जब मैं उनके नजदीक पहुंचा, तो उनके व्यक्तित्व ने—उनके व्यक्तित्व में इतनी गहरी काली आंच थी कि जिसको सह सकना कठिन था. एक भयानक आंच—एक तपस्वी की आंच. इस आंच ने मुझे खींचा. इसी आंच ने, बहुत संभव है, बहुत से उनके संबंधियों को, मित्रों को उनसे अलग कर दिया होगा. पर चूंकि मैं तो एक साहित्यिक था, जिसके मन में स्वाभाविक रूप में तपस्वियों, ऋषियों के प्रति एक श्रद्धा होती है, तो मैं उनकी ओर और खिंचा और फिर उसके बाद मैंने उनकी और भी कविताएं पढ़ीं और उनके अंदर जो प्रखर बौद्धिक व्यक्तित्व था, उससे मैं बंध और बिंध गया. मुक्तिबोध की जो टोटल पर्सनेलिटी है—उनकी कविता और जीवन—उसने मुझे बांधा और आज भी मुक्तिबोध से मैं मुक्त नहीं हो पाया हूं.

'कृति' निकालते वक्त आप लोगों ने किन साहित्यिक प्रतिमानों को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी थी?

'कृति' निकालने के पीछे दो-तीन कारण थे—कोई बहुत बड़ा कारण नहीं था. सिर्फ यही था कि साहित्यिक जरूरत को पूरा करने वाली कोई पत्रिका हम लोगों को दिखाई नहीं पड़ रही थी. पटना, लखनऊ, जबलपुर, बनारस इत्यादि कई शहरों से छोटी पत्रिकाएं निकल रही थीं, पर हमें—नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, रामकुमार आदि को ऐसा लग रहा था कि रचनात्मक स्तर पर तो ये पत्रिकाएं ठीक हैं,पर आलोचनात्मक स्तर पर वे किसी न किसी गुरुडम को आगे बढ़ाती हैं. ऐसे समय में जब नया साहित्य बनने की प्रक्रिया में है तो इस स्थिति का साहित्य पर प्रभाव पड़ सकता है और ऐसा हुआ भी था. बहुत-सी दूषित बहसें उन दिनों हो रही थीं, जिनका साहित्य से कोई संबंध नहीं था. प्रगतिशील लोग राजनीति को साहित्य पर थोप रहे थे और दूसरे छोर पर साहित्य को बिल्कुल किताबी बनाया जा रहा था. हम एक तीसरे रास्ते की तलाश में थे. तब 'कृति' का जन्म हुआ. नरेशजी और मैं उसके संपादक थे. आज भी आप 'कृति' के अंक उठाकर देख लीजिए, हमने 'कृति' को तमाम

घर पर : जिंदगी एक, पहलू अनेक

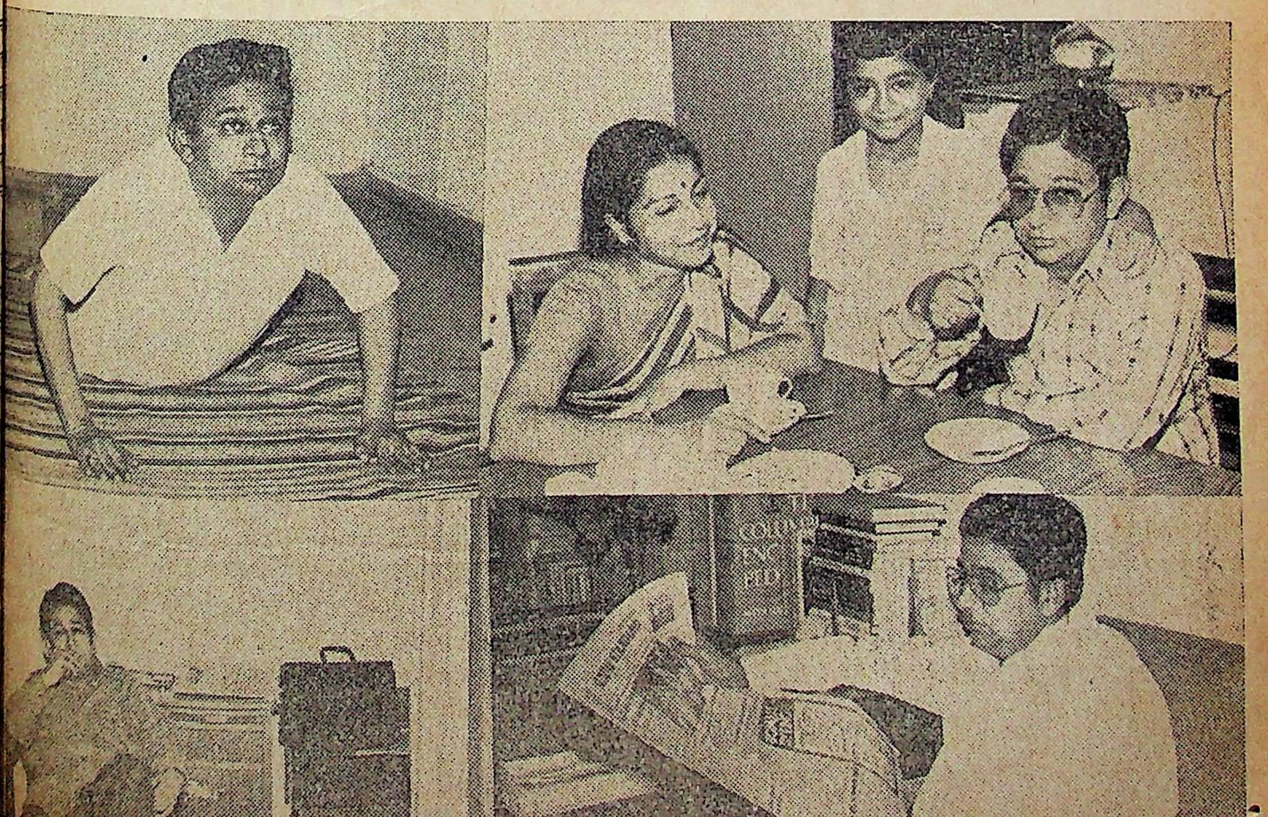

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वग्रहों से मुक्त रखा, उसे केवल रचना की पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित किया.

अपने लेखन के तमाम वर्षों में आपको श्रीकांतजी, कौन-सा पीरियड ऐसा दिखता है, जब आपको लगा हो कि मैं अपनी बात कह रहा हूं. जो मुझे कहना है, उसे मैंने पूरी तरह नहीं, तो काफी हद तक पकड़ लिया है. . . .

हां, यह बात आपकी सही है. हर रचना लेखक की अपनी रचना नहीं होती. हर रचना में लेखक का अपना व्यक्तित्व नहीं होता या प्रत्येक रचना-काल लेखक का अपना रचना-काल नहीं होता, लेकिन लिखते-लिखते वह एक ऐसे स्थल पर पहुंच जाता है, जब उसे लगने लगता है कि यही चीज थी, जिसकी मुझे वर्षों से तलाश थी—जिसके लिए मैं भटक रहा था. इस तरह का रचना काल मेरे यहां 1960 के बाद से शुरू हुआ और कविताओं के माध्यम से शुरू हुआ, गद्य के माध्यम से नहीं. लिख तो मैं बहुत समय से रहा था, लेकिन उस लेखन में मेरा अंतर्द्वंद्व व्यक्त नहीं था. पहले की रचनाओं में कुछ करुणा थी—कुछ पुकार थी—कुछ जैसा मैंने कहा—प्रकृति के प्रति एक तरह की ललक थी, लेकिन यह तो किसी भी कवि में हो सकती है. ऐसा क्या है, जो एक कवि को विशिष्ट बनाता है—वह है उसकी भाषा. भाषा से ही कवि स्मरण किया जाता है. मुझे अपनी भाषा 1960-61 में मिली, जब मैंने अपनी निराशाओं, पराजयों और कुंठाओं को संबोधित करना प्रारंभ किया. तब मेरी भाषा जैसे ढलकर आने लगी. यों कहा जाये भाषा भी और निराशा भी.

हां, मुझे लगता है 'माया दर्पण' में इन चीजों का कलमिनेशन हम देख सकते हैं, बल्कि कहानी-संग्रह 'झाड़ी' में भी, चूंकि दोनों को एक साथ देखा जाना चाहिए.

हां, आपने काल-निर्धारण ठीक किया है. और संवेदना के हिसाब से भी दोनों को साथ देखा जाना चाहिए. बल्कि आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने इस नब्ज पर उंगली रखी है. वे मेरे घोर पराजय और अविश्वास के दिन थे. वे सतही नहीं थे, बल्कि बड़े गहरे थे. जैसा मैंने बताया कि मेरा आरंभ तो एक सामाजिक-संस्कारी व्यक्ति के रूप

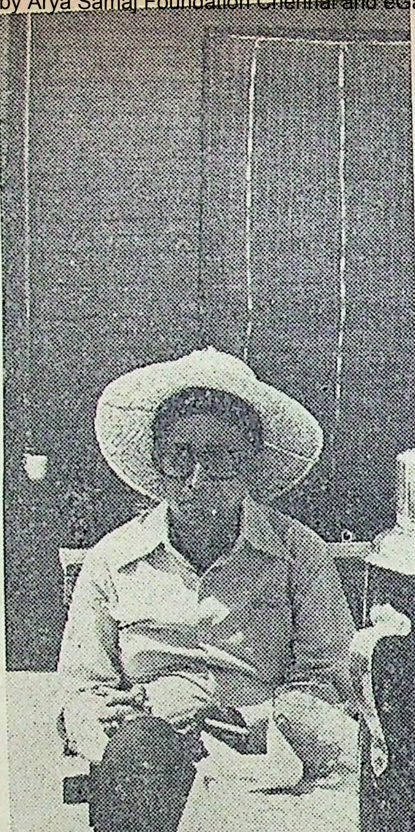

चीन के एक पुरातत्व स्थल पर

में हुआ, लेकिन आधुनिक जीवन के संक्रमण या यह कहिए कि नयी दुनिया में पैर रखने के बाद जिन संघर्षों से मुझे गुजरना पड़ा, उसने मेरे विश्वासों को हिला दिया. लेकिन मैं अपने कष्टों का बयान न तो करता हूं और न मुझे करना चाहिए, यह एक निजी चीज है. लेखक साहित्य में बयान नहीं देता—लेखक कष्टों और मानवीय पीड़ा को सिर्फ अर्थ देता है. अपनी तकलीफों में से गुजरते हुए मैं और अकेला होता गया. अपनी पराजय और निराशा की दुनिया को समझते हुए मुझे लगा कि सामाजिक परिवर्तन कठिन कार्य है—हम आदर्शों की जितनी भी बात कर लें, अंत में एक मूक पराजय और मौन समझौता ही बचा रह जाता है. जैसे-जैसे मुझमें ये धारणाएं बनने लगीं कि विचारधाराएं ढह रही हैं और मनुष्य खुद अपनी निगाह में बौना होता गया है, आधुनिक साहित्य की अपनी समझ और अपनी जीवन-प्रक्रिया से गुजरते हुए इस आशय पर पहुंचकर मैं और अकेला होता गया. 'झाड़ी' और 'माया दर्पण' इ[sic] दौर की रचनाएं हैं, जिनमें दर्प नहीं बल्कि वस्तुस्थिति से साक्षात्कार

अकेलेपन के संदर्भ में ही श्रीकांत साठ के दशक के प्रारंभिक दौर हिंदी में अस्तित्ववाद और उ[से] जुड़े साहित्य की बड़ी चर्चा हुई ऐसे रचनाकारों की बाढ़-सी गयी थी, जो सार्त्र-कामू-काफ्का नाम लेकर ही तर जाते थे. नकली माहौल में से आज क[ई] चीजें छंट चुकी हैं, लेकिन आ[ज] लेखन पर भी अस्तित्ववाद [और] उससे जुड़े विचारों की [छाया] किसी न किसी तरह दिखती आज आप अस्तित्ववाद के प्रभाव को सतही मानते हैं [या] गहरा?

अस्तित्ववाद यूरोपीय व्यक्ति का युद्धो[त्तर] दर्शन है. उसमें एक गहरी निराशा [और] एक सतही आशावाद है. उसका [तर्क] बहुत सरल है : सिर्फ व्यक्ति ही [...] होने का आशय ढूंढ़ सकता है और आ[...] को अर्थ दे सकता है. एक तरह से लुभावना दर्शन है. इसीलिए यह भार[त में] उन बहुत से लोगों के लिए अफीम ब[न कर] रह गया, मगर कुछ भारतीय लेखकों [पर] इस दर्शन का गहरा असर भी [...] 1960-70 के दौरान मुझ पर अस्तित्व[वाद] का गहरा प्रभाव इसलिए पड़ा, [...] हमारी सामाजिक तथा मेरी निजी [...] ही परिस्थितियां उसके अनुकूल थीं. [...] काफ्का और सार्त्र का कृतित्व [...] अलग-अलग कारणों से पसंद है. तीनों [को] एक शेल्फ में नहीं रखा जा सकता.

अस्तित्ववाद के दार्शनिक पक्ष [की] अगर हम अधिक चिंता न करें—तो भी यूरोपीय समाज [में] बौद्धिक की भूमिका पर [...] माध्यम से कई महत्वपूर्ण [...] उठी थीं. जूलियन बेंदा के 'ट्रीजन ऑव द क्लर्क्स' ([बुद्धि]जीवियों का विश्वासघात) [को] ध्यान में रखते हुए क्या आ[प] लेखक अपनी बात अपने निज[ी] अनुभवों के आधार पर [...] अधिक ईमानदार है या [फिर] एक विचारधारा या पार्टी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अपने को आत्मसात करके ईमानदार सिद्ध होता है? वैसे तो 'जिरह' में आपकी कई टिप्पणियां हैं—इन प्रश्नों पर विचार करने वाली—पर इस विषय पर यहां संक्षेप में कुछ कहें.

राजनीतिक पार्टी की बहुत-सी मांगें ती हैं. ढेर-सारे अंतर्विरोध होते हैं. बाहरी दबावों से समझौते करती है. हां तक कि सबसे अधिक मार्क्सवादी टियां भी प्राप्त स्थिति, सामाजिक नावट और अंतर्राष्ट्रीय हालात को र में रखते हुए समझौतों के लिए वश होती हैं और अपने बुनियादी आदर्श विरुद्ध आचरण करती हैं. पिछले तीस ों में सोवियत संघ से लेकर चीन तक ने ीवादी व्यवस्थाओं से समझौते किये इसकी क्या वजह है?

सृजन के क्षण में लेखक के सामने ऐसी ई मजबूरी नहीं होती. जिस हद तक ी, उस हद तक उसका लेखन अलेखन ा. इसलिए प्रतिबद्धता का प्रश्न ही क है. प्रतिबद्धता किससे? लेखक अपनी रचना के क्षण और रचना निहित मूल्यों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध बल्कि मेरी तो यह धारणा है कि वह के लिए भी प्रतिबद्ध नहीं. वह रचना ता है, क्योंकि वह रचना से बच नहीं ता. जो बचेगा, वह कैसे रचेगा? ना एक आकस्मिक घटना है, सुचिंतित रा नहीं.

श्रीकांतजी, यह बताइए कि बरसों पत्रकारिता से जुड़े रहने के बाद—पत्रकार होने की स्थिति ने आपके भीतर के लेखक की भाषा पर कैसा और कितना महत्वपूर्ण असर डाला?

कारिता ने—खास तौर से हिंदी की धुनिक पत्रकारिता ने वैसे तो अनेक ी लेखकों के कृतित्व पर अपना असर ा है, पर कुछ लेखकों पर यह असर ा है. कुछ पर इसका अच्छा असर कुछ पर प्रतिकूल है. जहां तक मेरा है, मुझे लगता है, मुझ पर इसने तर ही असर डाला है, क्योंकि पत्रकारिता बहुत साफ दृष्टि दी है—कम से कम ों में अधिक से अधिक बात कहने की ति और सरल ढंग से जटिल से जटिल बात को कहने की आदत डाली है. साहित्य में भी ये चीजें कुछ हद तक जरूरतें हैं—पर उस हद तक नहीं, जितनी पत्रकारिता की आवश्यकताएं बन गयी हैं. इस हिसाब से पत्रकारिता ने मुझे खास ट्रेनिंग दी—मेरे चिंतन को अधिक तार्किक और मेरी भाषा को ज्यादा स्पष्ट और दो टूक बनाया.

पत्रकारिता में एक तरह की जो जल्दबाजी रहती है—अपनी बात को फौरन कह देने की मजबूरी, जबकि लेखक अपनी बात को रोक सकता है. वक्त ले सकता है. इन दो दुनियाओं के फर्क के तनाव को आप किस तरह से महसूस करते रहे हैं?

यह बात आपकी सही है कि लेखन में तात्कालिकता आवश्यक नहीं होती, लेकिन धीरे-धीरे एक बीच का रास्ता बन जाता है, जहां रचना की गरिमा और उसकी गुरुता-गंभीरता भी बनी रहती है, साथ ही आडंबरों को निकाल देने में भी लेखक सफल हो जाता है. अच्छा लेखक दोनों दुनियाओं की कमजोरियों से मुक्त होकर लिखता है. आडंबरों से वह मुक्त हो जाता है. पहले जो मैं रचना करता था, उसमें आडंबर रहता था. छोटी-सी बात को मैं बड़ी करके रखने की कोशिश करता था. 'इंप्रेस' करने की प्रवृत्ति रहती थी, लेकिन पत्रकारिता के असर से यह 'इंप्रेस' करने की प्रवृत्ति मुझमें नहीं रही क्योंकि वह बुनियादी रूप में संप्रेषण करना चाहती है.

यानी आपके लेखन में पत्रकारिता की भूमिका 'पॉजिटिव' किस्म की रही. . .

हां, यह कहा जा सकता है. . . .

पत्रकारिता की दुनिया से ही धीरे-धीरे आप सक्रिय राजनीति की दुनिया में आये. आप इस राजनीति की दुनिया में क्या करना चाहते हैं?

साहित्य और राजनीति के सवाल पर लंबी-लंबी बहसें की जा चुकी हैं और उसका कोई आसान जवाब भी नहीं है, लेकिन यह बात साफ है कि जब कोई चित्रकार या साहित्यकार राजनीति में आता है तो वह चित्रकला या लिखना सीखने के लिए नहीं आता. कोई कारीगर अगर राजनीति में आता है तो वह अपने माध्यम को बेहतर बनाने के लिए नहीं आता. कोई कवि-लेखक जब राजनीति में आता है तो इस दृष्टि से नहीं कि उसका शिल्प या रचना संसार बेहतर हो जायेगा. राजनीति एक दूसरे किस्म का अनुभव है. जब भी कोई लेखक-कलाकार राजनीति में आता है तो वह गहरे सामाजिक मानसिक दबाव से ऐसा करता है. जब वह यह अनुभव करता है कि साहित्य मेरे अंदर की अभिव्यक्ति को पूरा नहीं कर रहा है तो वह राजनीति में आता है. साहित्य उसे इस अर्थ में अपर्याप्त नजर आता है कि जो काम राजनीति कर सकती है, वह साहित्य नहीं कर पाता. मेरा जीवन पूरी तरह 'घरेलू' नहीं रहा—सामाजिक उथल-पुथल में मैं हमेशा रहा. मेरे घर में ही कांग्रेस का पार्टी ऑफिस था. इसलिए बहुत दिनों तक साहित्य लिखते-लिखते जब मुझमें अपराध बोध-सा जागने लगा, तो मैंने साहित्य को विकृत और दूषित करने की बजाय राजनीति में सीधे-सीधे हिस्सेदारी करना बेहतर समझा. साहित्य को मैंने बैसाखी नहीं बनाया. जो लोग साहित्य को सीधी हिस्सेदारी में बदलकर उस पर बोझ डालते हैं, वे साहित्य को भी तोड़ते हैं और इस प्रक्रिया में खुद भी टूटते हैं. ऐसे कलाकारों की संख्या इस शताब्दी में कम नहीं है, जिन्होंने इस द्वंद्व में पराजित होकर आत्महत्याएं की हैं.

क्या आप मानते हैं कि राजनीति में सक्रिय हिस्सेदारी ने आपके साहित्य की भाषा पर कोई निर्णायक असर नहीं डाला? भाषा के 'स्वभाव' पर इसका क्या कोई असर नहीं पड़ता?

मैं नहीं सोचता कि राजनीति ने मेरी भाषा को इस हद तक प्रभावित किया है कि वह मेरे लिए—मेरे पिछले साहित्य के लिए एक अपरिचय का बोध बन जाये. मैं तो अब भी यही समझता हूं. राजनीति, साहित्य पर सीमित प्रभाव ही डाल सकती है. राजनीति लेखक के विशाल अनुभव का एक छोटा-सा हिस्सा है. वह विशाल अनुभव जरूर लेखक की भाषा पर असर डालता है—उसे तोड़ता-मरोड़ता है—उसी हद तक राजनीति भी भाषा पर असर • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालती है, लेकिन अगर हमने राजनीति की शर्तों को साहित्य पर नहीं लाद दिया है तो कोई कारण नहीं कि अपनी भाषा की गंभीरता और मर्यादा को सुरक्षित न रखा जा सके. मेरा खयाल है, इस शताब्दी के अनेक लेखकों ने ऐसा किया है. हमारे सामने आक्टेवियो पॉज का एक उदाहरण है, जो राजनीति में हिस्सा लेते रहे हैं, पर उनकी कविता रूमानी और अति-यथार्थवादी किस्म की है. उनकी कविता पर राजनीति का कोई ऐसा असर नहीं है, जिसकी मांग हमारे राजनीतिक कार्यकर्ता बनाम आलोचक करते रहे हैं. पिछले ढाई-तीन वर्षों की कविता में मैंने जो काल चुना है—ई. पू. 500 से ईसा के तीन सौ साल बाद का—उसमें समसामयिक राजनीति की उथल-पुथल नहीं है, बल्कि ढाई हजार वर्ष पहले के साम्राज्यों का पतन, वैभव, आकांक्षाएं मेरी रचना का विषय बनी हैं. वैसे तो किसी भी साहित्य में काल कोई भी हो, समसामयिकता आवश्यक है, लेकिन जैसा मैंने कहा, जिस तरह के संबंध की मांग हमारे मार्क्सवादी आलोचक करते हैं, उसे मैंने स्वीकार नहीं किया. उसे हमेशा रद्द किया है.

जैसा आपने बताया, एक तरह से बचपन से ही आप सक्रिय राजनीति की दुनिया से परिचित रहे—उसे सीधे शारीरिक रूप में जानते रहे. एक साधारण राजनीतिक कार्यकर्ता की जिंदगी से शुरू होकर शिखर राजनीति तक की दुनिया को ध्यान में रखते हुए आजादी के बाद की राजनीति को आप आजादी से पहले की राजनीति की तुलना में कैसे देखते और समझते हैं?

स्वाधीनता के पहले की राजनीति के सामने एक सीधा लक्ष्य था—स्वाधीनता के बाद की राजनीति का लक्ष्य क्या है? वह न तो राजनीतिक पार्टियां जानती हैं और न ही हमारा समाज जानता है. एक तरह की लक्ष्यहीनता में हम भटक रहे हैं. लक्ष्य के अभाव में कोई भी राजनीति कामचलाऊ राजनीति ही रहेगी. मेरे खयाल से गांधीजी की राजनीति को प्रमुख देन यही थी कि वे कामचलाऊ राजनीति या आंदोलन में विश्वास नहीं रखते थे. उन्होंने एक स्थायी और सतत् आंदोलन की कल्पना की, जो सिर्फ राजनीति में परिवर्तन न करे, बल्कि मनुष्य के बाहरी और भीतरी परिवेश में भी एक संपूर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया को जारी रख सके. स्वाधीनता के बाद की राजनीति मूल्यहीन है—इसीलिए आज देश में राजनीतिक पार्टियों और राजनेताओं की तादाद बढ़ती गयी है, पर जिंदगी में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है.

अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को राजनीति की दुनिया में क्या आप छिपाने की कोशिश करते हैं? क्या आपको लगता है कि इस जानकारी से आप एक 'बौद्धिक-साहित्यिक' हैं राजनीति की दुनिया में 'ऑपरेट' करने में कोई फायदा या नुकसान है?

मैं न तो इसको छिपाने की कोशिश करता हूं, न उसे उजागर करने की—जैसा मैंने कहा, राजनीति एक दूसरी ही तरह का कर्म है, जिसमें साहित्य की आवश्यकता नहीं पड़ती, जैसे कि मुझे साहित्य में राजनीति की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ी. मैं जैसा हूं, वैसा हूं.

क्या आपको नहीं लगता कि हमारे यहां राजनेता अंग्रेजी के लेखक और बुद्धिजीवी की बात पर ज्यादा गौर करते हैं? इस तरह से हिंदी के लेखक का व्यक्तित्व राजनेताओं के लिए बहुत ज्यादा मतलब नहीं रखता?

यह बात आपकी सही है कि अंग्रेजी में दीक्षित बुद्धिजीवी को अधिक मान्यता प्राप्त है, क्योंकि हमारे समाज के उच्च वर्ग की मानसिक बनावट ही ऐसी है—शासक वर्ग अंग्रेजी के बिना संसार की कल्पना नहीं कर सकता, लेकिन पिछले दस सालों में काफी कुछ बदला है. हिंदी क्षेत्र के बुद्धिजीवियों का दबाव शासन पर बढ़ता गया. आज हिंदी के बुद्धिजीवी को पहले से अधिक मान्यता प्राप्त है, लेकिन मैं राजनीति में किसी मान्यता के लिए तो गया नहीं था. बावजूद इस तथ्य के कि अंग्रेजी का बोलबाला है—अगर मेरी कही गयी बात को मान्यता मिली तो इसके पीछे कारण यही है कि अगर आपकी बात में ताकत है तो भाषा भी उतनी ही शक्तिशाली हो जाती है—चाहे कोई भी भाषा हो.

मैं शायद इस बात की तरफ आपका ध्यान खींचना चाहता कि यूरोप में लेखक-राजनेता संबंध की दूसरी ही परंपरा [...] इतिहास है. मालरो या गुंटर [...] के लेखन से उनके देश के राज[...] परिचित रहे हैं. हमारे यहां [...] प्रदेश के राजनेता भी बहुत को[...] करने पर अधिक से अधिक निर[...] या प्रेमचंद के नाम से अभिभू[...] सकते हैं.

नहीं, मैं आपकी बात को इस तरह से [...] करता हूं कि बुनियादी सवाल यह है [...] राजनेताओं को संस्कृति में कितनी [...] रुचि है? अधिकतर राजनेताओं को तो पश्चिमी साहित्य में दिलचस्पी है [...] आधुनिक भारतीय साहित्य में. मैं [...] समझता कि वे अंग्रेजी लेखकों को पढ़ते हैं. हो सकता है कि यूरोप आदि [...] में ऐसे लेखकों की जो शोहरत है, उस[...] आतंकित हों. मैं नहीं समझता कि ह[...] अधिकतर राजनेताओं ने राजा राव [...] पढ़ा होगा. हो सकता है, उन्होंने राजा [...] का नाम ही न सुना हो—सुना भी हो [...] उनके लेखन को पढ़ा नहीं होगा, ले[...] अगर वे राजा राव से आतंकित हैं तो इ[...] रहस्य यही है कि हमारे यहां के [...] जीवियों की तरह ही हमारे राजनेता [...] पश्चिम में मान्यता प्राप्त व्यक्ति[...] आतंकित रहते हैं. सवाल इसलिए [...] और अंग्रेजी का उतना नहीं है, जि[...] मानसिक गुलामी और आजादी का [...] इस अर्थ में, व्यापक अर्थ में—जैसे [...] या दूसरे कलाकार-लेखक घुटन अनु[...] करते हों—उसे तो मैंने महसूस कि[...] होगा, लेकिन कभी व्यक्तिगत स्तर [...] इस सवाल ने मुझे परेशान नहीं किया [...] जब तक देश की मानसिक आबोहवा [...] परिवर्तन नहीं होता, मेरी या आपकी [...] किसी की भी नियति में परिवर्तन [...] हो सकता.

इसके साथ यह भी सच है और [...] इस बात को बार-बार दोहराता र[...] कि सांस्कृतिक दृष्टि से हिंदी क्षेत्र [...] बंगाल, कर्नाटक इत्यादि की तुलना [...] विपन्न हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा बिसरजन

लक्ष्मीनारायण लाल

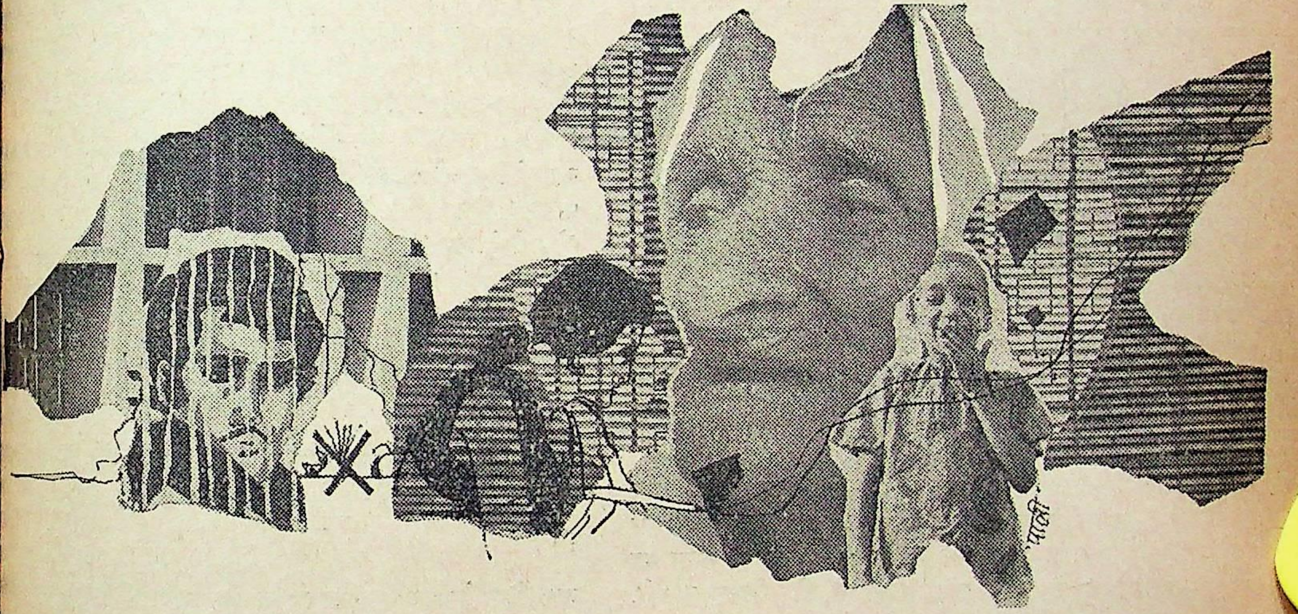

बाहर के अंधेरे और दरवाजे की ओट में पैसंठ साल की अइया दीवार के सहारे अब तक खड़ी थीं. बड़ी बहू से बेतरह डांट खाने के बाद से अइया लकड़ी की पुतली की भांति उस घर में इधर से उधर डोलती रह गयी थीं.

कुसुम आज इतनी देर से घर लौटी है. दरवाजे पर ही कुसुम को अपने अंक में लेकर अइया ने पूछना चाहा. . .'अरे नातिन बेटी, स्कूल में आज क्या हो रहा था रे? इत्ती देर क्यों कीं? हाय कित्ती भूखी प्यासी है रे'. . .पर आइया से आज कुछ न पूछा गया. बस, कुसुम का मुंह देखकर अइया निहाल हो गयी.

कमरे में आकर कुसुम ने रोशनी जलाकर अइया का मुंह देखा.

"यह क्या, तुम्हारे हाथ इतने ठंडे अइया!"

"मेरा हाथ अब क्या गर्म रहेगा रे?"

"क्यों?"

"इतनी बूढ़ी हूं!"

"नहीं, अइया, तुम्हें बादलों की हवा लग गयी है शायद! चलो बिस्तर पर सो जाओ!"

कुसुम अपनी बूढ़ी अइया को शाल के भीतर ढक कर और अपने शरीर के ताप से गरम करके बोली, "आज इतनी उदास क्यों हो? किसी ने फिर कुछ कहा है?"

"नहीं रे . . ."

"तो. . ."

अचानक मां की आवाज सुनायीं दी, "इस लड़की से मैं तंग आ गयीं. आते ही अपनी अइया की खाट में घुस गयी. न जाने कब इसे अकल आयेगी. . .! अइया को भी कुछ समझ है न बूझ. . .!"

मां को इस तरह कमरे में देखकर कुसुम डर गयी.

मां ने डांटते हुए कहा, "चल! उठती है या नहीं? चल, पहले कपड़े बदल."

अइया ने कहा, "अहा, जरा आराम करने दो न, कित्ती थकी है!"

मां नें कुसुम का हाथ पकड़कर उसे खाट से नीचे झटक दिया, खींचती हुई बाहर ले गयीं.

अइया का साहस कम नहीं था. मुंह में एक भी दांत न था. इतनी दुबली-पतली काया, पर आंखों में न जाने कहां की चमक, तेजी से बहू के पास जाकर बोलीं, "मेरी कसम तुम पर, अपना गुस्सा मुझी पर दिखाना. खबरदार, कुसुम को अगर कुछ कहा! जो कुछ कहना है मुझे कहो."

लखनऊ शहर के उस पंचबंगलिए के एक बंगले में धीमे-धीमे यह सब पिछले एक साल से हो रहा था. इसके पहले अइया अपने छोटे लड़के मदन गोपाल के परिवार के साथ कानपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में थीं. उससे भी पहले अइया अपने गांव में रहती थी—माझेताल जिला फैजाबाद, डाकखाना, सिमरी बाजार.

आज करीब चालीस-बयालीस साल पहले की बात है... बाइस साल की उम्र में विधवा अइया ने अपने उसी गांव माझेताल में ही रहकर अपने दोनों लड़कों—मदन गोपाल मिश्र और रामगोपाल मिश्र को एम. ए. तक पढ़ाया था. अइया सिमरी बाजार की कन्या-पाठशाला में अध्यापिका थीं. कुल दस बीघे खेत थे. एक ओर खुद खेतीबारी का काम देखती थीं, दूसरी ओर रोज तीन कोस की दूरी पर पाठशाला की वह नौकरी करती थीं.

सो, बड़ा बेटा रामगोपाल हुआ डिप्टीकलक्टर, और छोटा हुआ आबकारी महकमें में इंस्पेक्टर.

▣

आज वही रामगोपाल डिप्टीकलक्टर से ज्वांइट सेक्रेट्री होकर उस पंचबंगलिए के एक बंगले में सपरिवार रह रहा है. तीन संतान हैं रामगोपाल की. बड़ा बेटा एम. ए. पास कर 'कंपीटीशन' में बैठने की तैयारी कर रहा है. मझला बी. ए. फाइनल में है और सबसे छोटी है वही कुसुम, दसवीं कक्षा में पढ़ रही है.

अइया की आदत कहें या स्वभाव, वह घर के भीतर नहीं बैठ सकतीं. बस, या तो घर के बरामदे में बैठेंगी या दरवाजे पर. वह भी किसी कुर्सी, मोढ़े पर नहीं, जमीन पर भी नंगे फर्श पर. मेज-कुर्सी, सोफा-टेबुल आदि से इन्हें कोई रुचि या लगाव नहीं. बस, सबसे प्यारी है जमीन, धम्म से बैठ जायेंगी. इन्हीं बातों पर छोटे लड़के मदन गोपाल के मझले लड़के विजय ने अइया के उपर दो बार हाथ उठा दिया था. मदनगोपाल को भी असुविधा होने लगी थी माई से. मदन गोपाल की पत्नी शांति को कष्ट होने लगा था सासुजी से. पर वाह रे अइया, कभी किसी से कोई शिकायत नहीं. कोई गिला-शिकवा नहीं. जो मिला वही स्वीकार, जो नहीं मिला वह भी स्वीकार. जैसे कहीं कोई अधिकार नहीं. केवल कर्त्तव्य. दिन भर में न जाने कितनी बार उनके मुंह से निकलता, "हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस-अपजस विधि हाथ!"

बड़े लड़के रामगोपाल बड़े प्रेम और विश्वास से माई को कानपुर से लखनऊ ले आये थे. यूं माई का दोनों बेटों के घर आना-जाना तो लगा ही रहता था. पर जब से अइया का अपने गांव-गढ़ी से संबंध टूटा, तब से वह अपने वही दोनों बेटे, बेटों की बहुएं और उनके बच्चे, वही सारा संसार.

▣

डिनर टेबुल पर कुसुम को बिठाकर मम्मी ने कहा, "मैनर्स सीखो, चुपचाप डिनर टेबुल पर खाना खाओ."

कुसुम बोली, "अइया ने आज सुबह से कुछ नहीं खाया है."

"तुझे कैसे मालूम?"

"अइया का मुंह देखकर. ."

"कितनी बार कहा है, अइया-फइया मत कहा करो. सीधे-से दादी कहो, मगर देहाती कहीं के. . .! सीधे-से खाती हो या नहीं?"

कुसुम चुपचाप खड़ी थी. उसकी आंखें आंसुओं से भरती जा रही थीं. अइया ने आकर कुसुम को संभाल लिया. "चल कुसुम, यहीं खा ले. मां की बात नहीं टालते. ले खाले, मेरी प्यारी कुसुम."

अइया के हाथ से अन्न का वह कौर मुंह में लेकर कुसुम का मुंह निहारने लगी. मम्मी वहां से हट गयी थीं.

कुसुम अइया के पास बैठी खाती हुई सोचने लगी. . .हाय सीधी-सादी हैं अइया! कहीं कोई विरोध नहीं. कहीं कोई नहीं. जो भी कोई कुछ कहता है, अइया कैसे चुपचाप मान हैं. कैसे सब कुछ सह लेती हैं, किसी के खिलाफ मुंह तक खोलतीं.

कुसुम के सामने जैसे कोई तस्वीर खुली हो. अइया ने के इस बंगले में आकर जब पहली बार अपने ठाकुरजी का लगाया था और सारे घर को प्रसाद बांटा था, तब मम्मी को नहीं लगा था. मम्मी ने पापा से कहा था, "यह क्या तमा खुलेआम इस तरह प्रसाद बांटा जाये. पूजा-पाठ व्यक्तिगत है, इससे दूसरों को क्यों जोड़ा जाये? देखो न ड्राइंग रूम में उस कितने लोग बैठे थे. धड़ाम से प्रसाद लिये ड्राइंग-रूम में घुस यह कोई अच्छी बात थोड़े ही है. कोई क्या कहेगा... मिश्राजी परिवार कितना देहाती है! यह कोई गांव तो है नहीं. सारा तो मुझे देखना पड़ता है."

पापा ने अइया से तब कहा था, "माई देख, ठाकुरजी भोग तो ठीक है. पर इस तरह प्रसाद बांटना ठीक नहीं है. तुम बहूजी ठीक कहती हैं माई, चुपचाप ठाकुरजी का भोग अपने में ही लगा लिया करो."

"और प्रसाद?"

"अरे, प्रसाद तो प्रसाद है, जिसकी इच्छा होगी, वह खुद तु पास आकर ले लेगा."

▣

उस दिन से अइया चुपचाप अपने कमरे में ही अपने ठाकु को भोग चढ़ाती हैं और प्रसाद लेती हैं. कुसुम, पूरे घर में कुसुम. . .और अइया प्रसाद बांटती हैं. बंगले में आती चि को, कमरे में रेंगती चीटियों को!

फिर दूसरी समस्या घर में यह उठी कि बंगले में आने-वाले लोगों, खासकर उनकी स्त्रियों के सामने अइया आये या न

मम्मी और पापा दोनों इस बात पर सहमत हो गये कि मां का दूसरों के सामने आने-जाने का क्या मतलब! पर पा मम्मी समेत पूरे घर को सचेत किया कि माई को इस बात का नहीं लगना चाहिए. हां, यह सब व्यवहार बहुत होशियारी चतुराई से होना चाहिए, हां!

पर उस बंगले के घर-परिवार में सबसे बड़ी समस्या अइया के रामायण पाठ से.

सब कुछ छोड़ सकती थीं अइया पर रामायण पाठ नहीं छोड़ थीं. इस बात को केवल कुसुम जानती है. धीरे-धीरे गाकर राम पाठ करना, फिर भावविभोर होकर अइया का यह आत्म कैसा हृदयग्राही था—

कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनु
राम लखन मां जानकी सदा करहु क
जो जन जहां से आयहु कथा सुनी मन
अपने-अपने भवन को हरसि जाहु सुख पा

पहले अइया से कहा गया कि संध्या समय रामायण पाठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता. साहब दफ्तर से थके-मांदे घर आते हैं. उन्हें आराम और शांति चाहिए.

"हां, ठीक कहती हो बहू! मेरे बेटवा को आराम और शांति चाहिए!" अइया मान गयीं. संझौती समय से रामयाण पाठ का समय बदलकर रात के साढ़े आठ बजे कर लिया.

कुछ ही दिनों चला कि बड़े भइया ने कहा कि उन्हें 'डिस्टर्ब' होता है. कंप्टीशन की पढ़ाई है, कोई मजाक नहीं है.

इस बात पर कुसुम और बड़े भइया के बीच झगड़ा हुआ था. कुसुम के मुंह से जैसे ही निकला कि पॉप म्युजिक से उन्हें डिस्टर्ब नहीं होता, तो पापा सहित पूरे घर ने बड़े भइया का पक्ष लिया था, अपनी-अपनी पसंद है!. . .बड़े भइया की जिंदगी का सवाल है!. . कोई गलत कहेगा!. . .क्या है रामायण पाठ में. . . वही रोज-रोज कथा बिसरजन होत है. . .! आसपास के लोग हमारा मजाक उड़ाते हैं. . .!

तो सोने से पहले अइया चुपचाप पाठ कर लिया करें.

"चुपचाप?"

"हां माई, चुपचाप!"

"चुपचाप कैसे बेटवा?"

"मन में!"

"मन में. . .मन क्या चीज है रे?"

न जाने कितने दिनों, कितने वर्षों बाद मां-बेटे में उस दिन अचानक संवाद छिड़ गया था.

"बड़का बेटवा, बता न मन क्या चीज है?"

बड़े बेटवा. . .ज्वाइंट सेक्रेट्री रामगोपाल मिश्र, माई का मुंह देखते रह गये.

"मन कहीं चुपचाप रहता है बेटवा!"

"तो माई?"

"वही राम चाहें तो मन कटे. मन न कटे तो कुकुर-बानर की तरह मनुष्य मारा-मारा फिरे!"

बड़े बेटा रामगोपाल माई के सामने ठहर नहीं पाये. अपनी पत्नी के सामने खीस निपोरकर बोले, "बहुत बोलने लगी है माई, लगता है अब ज्यादा दिन की मेहमान नहीं है."

पत्नी ने अजब ढंग से कहा, "ऐसा क्यों मुंह से निकालते हो. बड़ी बुजुर्ग हैं, परम पूज्य हैं! तुम्हारी मां हैं तो मेरी भी मां हैं, बड़े-बूढ़ों का साया. . .!"

पतिदेव पत्नी का मुंह देखने लगे.

एक अजीब ठंडा सन्नाटा उनके बीच खिंच गया. आइने के सामने खड़े होकर अपनी मूछों में सफेद बाल काटते हुए मिश्रजी ने कहा, "जितनी इच्छा थी, माई की सेवा नहीं कर सका. चारो धाम यात्रा भी नहीं करा सका. . .सिर्फ बद्रीनाथ और जगन्नाथ धाम. नौकरी ऐसी है कि. . .! माई के साथ भी नहीं उठ-बैठ पाता. इतने दिनों से घर में है. हमारे साथ है. पर माई. . .हम क्या दे पाये माई को!"

पत्नी बोली, "तो किसने मना किया है?"

पति ने कहा, "यही तो समझ में नहीं आता सुधा, किसने मना किया है. हमारे बीच में वह अदृश्य बाधा कहां है, क्यों है? माई के साथ हमारा व्यवहार. . .!" पति अचानक पत्नी के सामने से हट गये.

"चुप-चाप?"
"हां माई, चुपचाप!"
"चुपचाप कैसे बेटवा?"
"मन में!"
"मन में. . .मन क्या चीज है रे?"

मन कहीं चुपचाप रहता है?—मां-बेटे के रिश्तों में घर-परिवार, मान-सम्मान और मानवीय आस्था को रेखांकित करती प्रख्यात कहानीकार की ताजा कहानी

सुधा ने कहा, "सुनो, माई ने कुछ कहा है तुमसे?"

"नहीं तो!"

"नहीं, कुछ जरूर कहा है!"

"सुधा, माई कहां कुछ कहती हैं. एक साल से ज्यादा हो गया माई को हमारे साथ रहते. बताओ, बोलो, कभी किसी को कुछ कहा है माई ने?"

"हां, सो तो है!"

"हम सबने केवल अपनी सुविधा देखी है."

सुधा को यह बात अच्छी नहीं लगी, "क्या मतलब?"

"कुछ नहीं!"

सुधा ने कहा, "तुम समझते हो, अइया सिर्फ तुम्हारी मां है?"

"इसमें समझना क्या है!"

"क्या कहा?"

"मुझे जाना है. दफ्तर के बाद एक मीटिंग भी है आज!"

मिश्रजी जाने लगे. सुधा ने पति के सामने लौंग, इलायची बढ़ाते हुए कहा, "जिसे चौबीस घंटे घर में रहना पड़ता है, जिसे सब कुछ देखना पड़ता है. . .अपने बच्चों के भविष्य से लेकर पास पड़ोस तक, उसकी मजबूरी भी तो कोई देखे."

"मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा!"

"कहा नहीं, उस दिन नहीं कहा कि माई के प्रति हमारा व्यवहार ठीक नहीं है. क्या ठीक नहीं है? तुम खुद अपनी माई के साथ क्यों नहीं उठते-बैठते? माई के साथ रहो, पूरा एक दिन एक रात. क्यों नहीं रहते? किसने मना किया है? इतनी छुट्टियां तो बाकी हैं. . .माई को साथ लेकर तीर्थयात्रा पर क्यों नहीं जाते. हुअं, बड़ा आसान है फतवा देना, हमारा व्यवहार ठीक नहीं है!"

सहसा मिश्रजी ने देखा, माई आकर पीछे खड़ी है.

"माई!"

"का बात है बेटवा? . . .बहू, का बात है?"

"कुछ नहीं माई!. . .अच्छा, मैं जा रहा हूं!"

"नहीं, रुक जा बेटवा! मेरी वजह से कोई कष्ट है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

> "अइया, जब तुम मेरी उमर की थीं, कैसी थीं?"
> "तब मेरी शादी हो चुकी थी!" अइया हो-हो करके हंसने लगी थीं.

"क्यों माई?"

"अगर मेरी वजह से कोई कष्ट हो गया तो मेरा जीना बेकार है."

"और तुम्हें कष्ट हो गया माई तो हमारा जीना बेकार है." मिश्रजी हंसते हुए तेजी से बाहर निकल गये. माई के चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी.

"क्यों बहू, बेटवा का बात कर रहा था?"

"ऐसे ही माताजी, कोई खास बात नहीं."

"मेरी बातें कर रहे थे तुम लोग. मैंने सब सुना है. बहू, तुमने बिल्कुल सही कहा. . .बड़ा आसान है फतवा देना, तुम पर कितनी जिम्मेदारी है. सब कुछ तुम्हें ही तो देखना है. सब मेरे ही बच्चे तो हैं. सब कुछ मेरा है बहू! सबको मेरा प्यार आशीष!"

कुर्सी पर बिठाकर सुधा बहू अइया के सिर पर तेल लगाने लगी. अइया बोलीं, "कभी किसी चीज का दुख नहीं करना बहू! मुझसे कुछ छिपाना नहीं. हम तो पके फल हैं किसी दिन डाल से छूट गये."

सुधा बहू की आंखें भर आयीं. कुछ कहना चाहा पर कंठ से फूटा नहीं. तभी स्कूल से कुसुम आयी, "मम्मी, अइया की चोटी मैं करूंगी."

कुसुम ने अइया का सिर चूमते हुए कहा, "अइया, जब तुम मेरी उमर की थीं, कैसी थीं?"

"तब मेरी शादी हो चुकी थी!" अइया हो-हो करके हंसने लगी थीं.

▣

दशहरे के दिन थे. शाम का वक्त था. अइया का कमरा भीतर से बंद था. कुसुम ने आवाज दी, "अइया! ओ अइया!!"

कोई जवाब नहीं.

हल्के-से किवाड़ खोलकर कुसुम अंदर गयी. अइया के सामने रामायण खुली थी, सुंदरकांड. अइया आंखें मूंदें चुपचाप बैठी थीं.

कुसुम को अपने पास अनुभव कर अइया की आंखें खुल गयीं.

"अइया, क्या कर रही थीं?"

"पाठ कर रही थी. . ."

"चुपचाप आंखें मूंदें?"

"हां रे कुमू, चुपचाप मन ही मन रामायण पाठ. . ."

"क्यों?"

"ऐसे ही करना चाहिए, किसी को विघ्न नहीं होता."

"विघ्न?"

"हे राम!"

"मतलब, पापा ने कहा है. . .मम्मी ने कहा है. . .अइया ने . . .'

कुसुम के तप्त मुंह पर अइया ने हाथ रख दिया, "नहीं कुमू, शोर नहीं करते. बड़ा भइया पढ़ रहा है. बड़ा अफसर इम्तिहान पास करेगा. तेरी मम्मी अभी सोयी है. थक जाती है कितना काम करती है. तेरे पापा ड्राइंग-रूम में दोस्तों के सा बैठे हैं. अरे, हमारा का है रे!"

ऐसा रोज होने लगा. संध्या वही साढ़े सात बजे. अइया अप बंद कमरे में चुपचाप मन ही मन रामायण पाठ करतीं. मन ही म निःशब्द कहतीं—**कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमा राम लखन सीय जानकी सदा करो कल्यान. प्रभुसन कहियो दंडव तुम्हें कहैं कर जोरि, बार-बार रघुनाथ कहि सुरत करायो मोरी!. श्रोता निज-निज धाम गये, शंभु गये कैलाश, हनुमान प्रभु पंह ग विनवत तुलसीदास. जो अक्षर जगदम्बिका भूल परे कहूं हो आदि शक्ति भूधर सुता छिमा कियो सब सोय. . .**

कुसुम को पता है अइया कब सोती हैं, कब जागती हैं. कब उ भूख लगती है. कब उन्हें चुपचाप रहना अच्छा लगता है. कब बातें करना चाहती हैं. . .पर इधर कुसुम देख रही है, अइया का कुछ व्यतिक्रम होने लगा है.

कुसुम अइया के साथ ही सोने लगी है. पापा और मम्मी अइया पर पूरा ध्यान देने लगे हैं.

▣

जाड़े के दिन बीत रहे थे. गहरी सोयी हुई रात में सहसा कुसु को लगा कि अइया कुछ गा रही हैं. उसने टेबुल-लैंप जलाकर दे अइया पलंग पर बैठीं ध्यानमग्न निहायत हल्के स्वरों से अद् सुर में गा रही हैं—**जो जन जहां से आयहु कथा सुनी मन ला अपने-अपने भवन को हरषि जाहु सुख पाय. अर्थ न धर्म न का रूचि गति न चहें निर्वान, जन्म-जन्म प्रभुपद भगति यह बरद न आन. . .**

. . .कुसुम ने देखा अइया न जाने किस अतल गहराई में डू हुई हैं. कमरे से बाहर चारों तरफ गहरा अंधेरा था. खुली खिड़कि से निरभ्र आकाश में तारे छिटके हुए थे. पछुआ हवा चल रही अइया के सफेद केश, खूंटी पर टंगे अइया के कपड़े अनेक तरह छाया फैलाते हुए रह-रहकर कांप उठते थे. अइया कित सुंदर लग रही थीं. वृद्धापन की शीर्णता ने अइया पर एक अ आवरण चढ़ा दिया था. लगता था जैसे अइया संसार से ब दूर जैसे किसी अन्य लोक में हैं. कुसुम को अचानक लगा, अ जैसा अकेला प्राणी संसार में और कोई नहीं है.

धीरे-धीरे अइया का स्वर टूटने लगा. अइया बिल्कुल हो गयीं.

"अइया!" कुसुम ने बढ़कर अइया को थाम लिया. उन सिर लुढ़कने लगा था.

"अइया."

अइया की आंखें न जाने किस असीम लोक में मुंदी हुई थ अइया का दायां हाथ कुसुम के माथे पर कांप रहा था.

अइया को अपने अंक में संभाले कुसुम निःशब्द रोने ल अइया अब अपने उस पार्थिव शरीर में नहीं गयी थीं, फिर भी कुसु को चिंता हुई कि अइया को कहीं किसी प्रकार का विघ्न न हो कुसुम के पूरे अंतर्लोक में अइया के मौन स्वर गरज रहे थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगला लघुकथा

अंतरंग

◘ दीपक राय

एक मकान एक लड़के से प्यार करने लगा. लड़का हर रोज उस मकान के बरामदे में जाकर खेलता था. मकान को उससे बड़ा सकून मिलता.

कुछ दिन बाद लड़का रोते-रोते मकान के पास आया. मकान ने पूछा, "तुम रो क्यों रहे हो ?" लड़के ने बताया कि उसके मां-बाप ने उसे घर से निकाल दिया है. मकान झट-से बोला, "इसमें रोने की क्या बात है, मेरे पास इतने कमरे हैं, एक कमरा तुम ले लो." लड़का उस कमरे में रहने लगा.

दो-तीन दिन बाद लड़का फिर रोने लगा. मकान ने पूछा, "अब क्या हुआ?" लड़का बोला, "भूख लगी है." मकान ने थोड़ा सोचकर कहा, "मेरा एक हिस्सा किराये पर चढ़ा दो." लड़का तुरंत मान गया.

कुछ वर्षों बाद लड़का फिर उदास हो गया . मकान को बड़ी हैरानी हुई. उसने डांटकर पूछा, "अब क्या परेशानी है ?" लड़के ने थोड़ा संकोच से कहा, "अब मैं शादी करना चाहता हूं." मकान ने कहा, एक लड़की चुन लाओ और शादी कर लो. मैं तुम्हें एक कमरा और दे सकता हूं." लड़के ने बहुत जल्द शादी कर ली.

इसके दो साल बाद मकान को बहुत तेज बुखार हुआ. उसने लड़के को बुलाया. लड़के ने किसी भी तरह की मदद देने से इंकार कर दिया. मकान उस समय बड़ा क्रुद्ध हुआ, "तू यहां नहीं रह सकता; यहां से चला जा."

कालांतर में शहर में बमबारी हुई. एक बम उस मकान पर भी गिरा. मकान दब गया और कुछ किरायेदार भी मारे गये. तब से वह अकेला रहने लगा.

चालीस साल के बाद एक दिन किसी बूढ़े आदमी ने मकान का दरवाजा खटखटाया . मकान ने उस आदमी को पहचान लिया. फिर हाल-चाल पूछा. बूढ़े ने अपने सारे किस्से सुनाने शुरू किये. फिर बहुत पहले मकान के साथ किये गये दुर्व्यवहार के लिए भी उसने क्षमा-याचना की.

मकान ने कहा, "मेरी कमर टूट चुकी है, अब तुम्हें क्या चाहिए ?" बूढ़ा बोला, "एक छत चाहिए." मकान ने इजाजत दे दी. अभी कुछ दिन पहले बूढ़ा आदमी चल बसा, तो मकान ने ही उसे अपने यहां कब्र भी दे दी. □

● रूपांतर : जितेंद्र सेठी

था बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमान, राम लखन मां जानकी सदा करहु कल्यान. . .जो जन जहां से आयहु कथा सुनी मन लाय, अपने-अपने भवन को हरषि जाहु सुख पाय. . .!

पूरे घर-परिवार में अइया इतनी फैली हुई हैं, इतने गहरे उतरी हुई हैं. यह सबको अइया के स्वर्गवास के बाद पता चला. दोनों बेटों और बहुओं ने बड़े धूमधाम से अइया के क्रिया-कर्म किये. [illegible]-गढ़ी, सारे नाते-रिश्तेदार अइया के कर्म में आये.

बड़े लड़के डिप्टी साहब रामगोपाल पूरे दो महीने की छुट्टी लेकर माई का अस्थि-विसर्जन करने कहां-कहां नहीं गये—हरिद्वार, रामेश्वरम, कन्या कुमारी, द्वारिका, प्रयागराज. . .

माई बिना लखनऊ का वह बंगला इतना उदास होगा, इस तरह काटने दौड़ेगा, पापा-मम्मी को पता नहीं था...मम्मी और पापा ने तय किया कि लखनऊ से कहीं और तबादला हो जाये.

दिल्ली अच्छी जगह है, वहां सब कुछ अपने-आप भूल जाता है. बच्चों के भविष्य के लिए भी अच्छा रहेगा.

काफी दौड़-धूप, मेहनत-कोशिशों के बाद रामगोपाल मिश्र को दिल्ली में स्थान मिल गया.

मम्मी बहुत खुश. . .दोनों बेटे सबसे ज्यादा खुश. कुसुम अपनी अइया को एक क्षण भी नहीं भूल पा रही थी. वह चुप रहने लगी थी.

नयी दिल्ली के सरकारी बंगले को नये सिरे से पापा-मम्मी ने सजाया. दोनों भइया बहुत खुश थे.

नयी दिल्ली के उस नये घर में एक दिन बीता था. रात को अचानक मम्मी की आंख खुली. पति को जगाकर कहा, "सुनो, यह आवाज कहां से आ रही है, देखो तो. . !"

पति-पत्नी बगल के कमरे से ड्राइंग रूम में गये. चारों तरफ अंधेरा था. स्टोर से सटा हुआ एक छोटा-सा कमरा था. पिताजी ने रोशनी जलाकर देखा. . .कुसुम आंख मूंदे रामायण पाठ कर रही है.

"यह क्या है?" दोनों ठगे-से आश्चर्यचकित देखते रह गये.

कुसुम ने यह गाते हुए पापा और मम्मी को देखा—कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमान. . .

"यह क्या तमाशा है?" गुस्से में मम्मी ने कहा.

"कुसू यह क्या करती हो बेटी!" पापा ने बेहद ठंडे स्वरों में कहा.

कुसुम के ओठों से अबाध स्वर फूट रहे थे—श्रोता निज-निज धाम गये, शंभू गये कैलाश, हनुमान प्रभु पंह गये विनवत तुलसीदास. . .! □

● 8/17, ईस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली—110008.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• गिरिराज किशोर

रघुनाथ कृपा

प्रदेशों में प्रदेश उत्तर प्रदेश, शहरों में शहर बुलंदशहर और विभागों में विभाग समाज कल्याण विभाग. सोचने को सब कुछ, कहने को राम राम.

रम्मे का असली नाम रामेश्वर. काम हरिजन कल्याण! शौक सुरती ठोकना और उसे होंठ के नीचे दबाकर बलबलानाः

"यार, इस देश की खूबी यह है कि देश चलता है. करने-कराने की इसे चाह नहीं. इसे कहते हैं रघुनाथ कृपा! तुलसीदास महाराज ने जो रघुनाथ का गुन गाया है, कोई मूरख तो थे नहीं. जिस दिन यह देश करने-कराने के चक्कर में पड़ जायेगा तो रघुनाथ को क्या पागल कुत्ते ने काटा है कि वे कृपा करते घूमेंगे. अरे, उनकी तरफ से जाये सारा देश भाड़ में. कभी-कभी जब देश में पाप बढ़ता है तो वे अपने भक्तों से कहलवाते हैं—अजगर करे ना चाकरी, पंछी करे न काम. दास मलूका कह गये, सबके दाता राम! दास मलूका का कहा मानो और अपने घर जाओ. अपने करमों को रोओ और मुझे माफी दो."

रम्मे का मुंह धीरे-धीरे आध्यात्मिकता से भर जाता. सुरती जबान पर हावी हो जाती और वह मगन मन हो कभी गाली बकता और कभी चुप पड़ जाता या फिर कच्छप की तरह अपनी सब इंद्रियों को टपरी के नीचे समेटते-समेटते कुर्सी पर गठरी बन जाता. याचक और अभ्यर्थी उसकी चुप्पी के नीचे दबते-दबते इतने दब जाते कि उनकी समझ में कुछ नहीं आता. मन ही मन प्रार्थना करते कि रघुनाथ कृपा हो. जब नहीं होती तो किसी और दिन के लिए उसका आरक्षण कराने की आकांक्षा से भरकर चले जाते. जाने के बाद जमीन पर उन लोगों के बैठने की जगहें एक के बाद एक उभरती रहतीं, पर रम्मे को नजर न आतीं.

▣

रामेश्वर उर्फ रम्मे, हरिजन कल्याण विभाग के बाबू पद पर उस ऐतिहासिक क्षण में अपनी नियुक्ति कराकर आया था, जब प्रदेश सरकार ने सामाजिक एवं हरिजन कल्याण विभाग का स्वतंत्र रूप से सृजन करके अपना नाम प्रगतिशील प्रदेशों का सरगना बनाने की योजना बनायी थी. विभाग के निर्मित होने के तुरंत बाद ही उसकी नियुक्ति हुई थी. उसका नाम पहली सूची में था. उसके कुछ दिनों बाद कैबिनेट स्तर पर एक स्वतंत्र मंत्री नियुक्त हुए थे. यह बात रम्मे के लिए भी उतनी ही गर्व की थी, जितनी पंद्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालिस को जन्म लेने वाले बच्चों के लिए. उस दिन जन्म लेना गर्व की बात हो सकती है, इस एहसास से वह सदा फूला रहता था.

जब वह जिला हेडक्वार्टर पर पहुंचा था तो उसे कुछ दिनों ए.डी.एम. प्लानिंग के पेशकार साहब की शागिर्दी मयस्सर हुई थी. पेशकार साहब सज्जन और पहुंचे हुए इंसान थे. सबको बेटा कहकर पुकारते थे. यहां तक कि रिटायरमेंट के नजदीक पहुंचा युसुफ जमादार तक उनके लिए बेटा था. पेशकार साहब की शागिर्दी में रहकर रम्मे को जगजीवन को समझाने वाली वह नजर मिली थी, जो अंग्रेजों के द्वारा तैयार किये जाने वाले आई. सी. एस. अफसरों तक को प्राप्त नहीं होती थी. उसे उसने सहेजकर पहना था. जब भी उस पर भीड़ पड़ती थी तो वह उन्हीं की शरण में जाता वे उसी सिद्धभाव से कहते, "कहो बेटा, कैसे आये!" उनके दिया गया समस्या का समाधान वह अमृत घट की तरह दोनों में सहेजकर घर ले आता था.

काफी दिन स्वतंत्र रहने के बाद जब हनुमान प्रसाद ने हरि कल्याण अधिकारी के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तो रम्मे मन को आक्रोश और घृणा ने आ दबोचा. वह पीपल के पात की अंदर ही अंदर क्रोध से कांपता रहा. इतने दिनों ए. डी. एम. के कार्यकाल में बैठने और पेशकार साहब की पेशकारी क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो वक्त की मार है साब, आप वहां बैठे हैं, हम यहां. उससे क्या? जो हम हैं, वो हम रहेंगे और आप जो हैं, वो आप. रघुनाथ कृपा सब पर बराबर होती है..." रम्मे बाबू की यह रघुनाथ कृपा, आइए देखें कि किस तरह दफ्तरशाही को बेनकाब करती है. 'सारिका' के मार्च 1979, अंक: दो में प्रकाशित गिरिराज किशोर की कहानी 'घोड़े का नाम घोड़ा' को पाठकों ने बेहद सराहा है. अब प्रस्तुत है इनकी ताजा कहानी.

अलावा हरिजन कल्याण अधिकारी का काम भी करता रहा था. अपनी जात के कई लोगों को पेशकार से कहकर हरिजनों को मिलने वाले अनुदान तक दिलवा चुका था. वैसे उसका काम प्रदेश सरकार और निदेशालय की डाक इकट्ठी करके साहब के सामने पेश करना और उनकी चिड़ियां बैठवाकर दफ्तर दाखिल कर देना मात्र था. फिर भी जो दबदबा था, वह तो था ही! दफ्तर का एक छत्र राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा. जब हनुमान प्रसाद आया और कार्य-भार ग्रहण किया तो रम्मे किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा हो गया. यह पता चलने पर कि उसकी कुछ माह पहले ही शादी हुई है, वह और भी पागल हो गया.

"अरे, अभी तो शादी की तह तक भी नहीं पहुंचा होगा, बन गया साला अफसर और यहां तीन बच्चों के बाप हैं. बड़ा बच्चा इस 'हनुमान प्रसाद' से थोड़ा ही हल्का पड़ता होगा. हमारी लटकन में से चार हनुमान प्रसाद निकल आयें हा...हा...हा..."

पेशकार साहब ने उसकी बात सुनी और बोले, "बेटा, अफसर से लड़ोगे तो जल्दी मात खा जाओगे. अफसर से कभी मत लड़ना. अफसर बालू का भी हो तो भी दांत असली ही होते हैं. अफसर के सिर में एक बिंदु होता है, उसी से वह कंट्रोल में रहता है. उसे सदा उत्तेजित रखो, बस... काम को कहे तो, "अभी किया सा'ब!" फिर राम भजो. ऊपर से डांट आये तो तुम भी ऊपर वाले को गाली दो और कागज.... फिर राम भजो. वह बिंदु...लपलप करता रहेगा तो बेटा मजे में रहोगे. अफसर पर हमला किया और वह चूहे से शेर बना. जाओ बेटा, अब हमारे भजन का समय हो गया. रघुनाथ कृपा..."

रम्मे पेशकार की सलाह पर चला तो जरूर, पर पूरी तरह नहीं. बीच-बीच में चूक जाता था. उसका असर दोनों पर ही खराब पड़ता था. हनुमान प्रसाद को आता देखकर रम्मे के शरीर में चुनचुनी उठने लगती थी. उसका व्यवहार पेशकार साहब द्वारा बताये गये गुर से भटक जाता था. वह कुर्सी पर ही बैठा रहता था. नमस्ते करने को बजाय उसकी तरफ चढ़ी-चढ़ी नजरों से देखने लगता था. हनुमान प्रसाद उसके इस व्यवहार को ताड़ लेता था. उसके मन में उसकी प्रतिक्रिया भी होती थी, पर अपने घर की शांति की खातिर वह अपने अंदर होने वाली प्रतिक्रियाओं को घोट जाता था. उसने घर की शांति को सुरक्षित रखने के लिए एक तरकीब आजमायी थी कि रम्मे का पूरा नाम लेकर बड़े खुशामदाना ढंग से बात करता था. एक दो बार मामला उसकी तरकीब के बाहर हो गया था तो दफ्तर से उसके घर तक पहुंचा था. उसे लगातार अनुभव होता रहता था कि उसके और उसकी पत्नी के बीच कोई बाहरी तत्व है. तब से वह रम्मे की खुशामद करके भी अपने आप को उस तरह के अनुभव से दूर रखने का पूरा प्रयत्न करते रहने के बावजूद काफी नजदीक पाता था. कभी-कभी वह उससे कहा करता था, "रामेश्वर बाबू, आपने यह दफ्तर चालू किया, आपने ही इसे जमाया, हम तो बहुत बाद में आये. आगे भी आपको ही संभालना होगा. इसे ठीक से चलाने की जिम्मेदारी भी आप पर ही है. हम आज हैं, कल नहीं होंगे. आप को और आपके साथियों को तो यहीं रहना है..."

हनुमान प्रसाद ये सब बातें उसे खुश करने के लिए कहता था, पर वह खुश कम और नाराज ज्यादा हो जाता था. उसे बीता जमाना याद आ जाता, जब वह यहां सर्वेसर्वा था. पेशकार साहब की मेहर-बानी थी. कई बिरादरी वालों का तंग हाथ उसने हरिजनों के खाते से खुलवाया था. वह इस दृष्टि से पिछड़े और अनुसूचित जाति के लोगों को एक-सा सताया हुआ मानता था और सरकारी सहायता का सबको समान रूप से अधिकारी समझता था. पेशकार साहब की कृपा से उसने सब नुस्खे सीख लिए थे, जिनके चलते वह रघुनाथ कृपा का उपभोग स्वजनों के पक्ष में भी करने में सक्षम हो पाया था, पर अब कठिनाई थी. पेशकार साहब का संरक्षण अब उतना अधिक और सीधे प्राप्त नहीं था. बस, परामर्श था. परामर्श और संरक्षण का फर्क अब उसे पूरी तरह स्पष्ट हो गया था. इसलिए वह हनुमान प्रसाद की बात को पूरी तरह से उल्टा समझकर ऐसा भाव मुंह पर लाता था कि तुम क्या कहते हो, हमने तो दफ्तर खोला ही, तुम तो बाद में आये. . .तुम मानोगे, तभी क्या यह बात सच्ची होगी. बस, कह नहीं पाता, क्योंकि पेशकार साहब की बात उसके ध्यान में उड़ती चिड़िया की तरह अचानक आकर फड़फड़ाने लगती थी. हनुमान प्रसाद उसके इस भाव को भी पहचान जाता था.

हनुमान प्रसाद को कई बार रम्मे को सीधे या घुमा-फिराकर कहना पड़ता था कि वह हरिजन कल्याण की योजनाओं में ज्यादा रुचि लेगा तो विभाग और दफ्तर की बात भी बनेगी और हम लोग जनता की नजरों में ऊंचे भी उठेंगे. ऐसे समय पर उसका जातिगत अभिमान जोर मार उठता था.

"यह तो वक्त की मार है साब, आप वहां बैठे हैं, हम यहां. उससे क्या? जो हम हैं, वो हम रहेंगे और जो आप हैं, वो आप. रघुनाथ कृपा सब पर बराबर होती है. करम गति तक बदल जाती है, पर जबान का काम है, साफ कहना. न कहे तो इस जबान में और जूते के अंदर वाली चमड़े की जीभ में क्या अंतर. उसे तो खींच-खींचकर ठीक जगह पर लाना पड़ता है. ये सरकार डंडे के जोर पर ऊंच-जात को नीच और नीच को ऊंच बनाना चाहती है. हम उनके दरवाजों पर हाथ जोड़ते फिरें, "चलो महाराज, चल-कर दान-दखना ले लो. तुम हमारे मान. . .! कलयुग के यही चिह्न

• •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं. ये सब बड़े-बड़े लोग इतना नहीं समझते कि हमारा पेट भरेगा तो उनका भी भरेगा. हमारा ही नहीं भरेगा तो उनका कहां से भरेगा. शास्त्रों में कहा है—बाम्हन को भिच्छा, छत्री को लूट; बनिये को बनज और छूद्र को जूठ.

हनुमान प्रसाद हथियार डाल देता और चुप लगा जाता. अगर वह जवाब दे भी तो किसे दे. इधर से दिये जाने वाले जवाब को समझने के लिए दूसरे छोर पर भी समझने वाले की जरूरत होती है. जवाब देना, न देना बराबर. फिर भी हनुमान प्रसाद समझाने की दृष्टि से कहता जरूर, "रामेश्वर बाबू, चाकरी का मतलब ही है निकृष्ट काम. जब एक बार कर ली तो जो मालिक कहे, वो करना है, चाकरी में नाकरी क्या?"

रम्मे पर और उल्टा प्रभाव पड़ता, "वाह साब, हमने नौकरी की है, धरम और जात नहीं बेचे. . .जिसने नौकरी के लिए बेचे हों, वह यह सब करे और कहे. . ."

हनुमान प्रसाद चुप्प! कहे तो क्या कहे. ऊपर से डायरेक्ट्रेट में बैठा खन्ना रोज फर्रे पर फर्रा भेजता रहता था. उसकी शक्ल मय उसके कमरे के हनुमान प्रसाद की आंखों के सामने चलती फिरती नजर आने लगती थी. उसकी आंखें सामान्य आदमी से ज्यादा चढ़ी और बाहर को निकली हुई थीं. वह पूछता-सा लगता, "कितना रुपया बांटा हरिजनों में? भेजूं फर्रा, नानी याद आ जायेगी इस बार. वह अपने अंदर की समस्त कातरता के साथ रम्मे की ओर देखना चाहता कि भैया कुछ करो, पर रम्मे का चेहरा उसे खन्ना से भी अधिक भयानक लगने लगता था.

खन्ना की भर्ती भी उसी के साथ हुई थी. खन्ना नौकरी के शिकंजे से गुजरा हुआ आदमी था, वह ताजा, अनुभवहीन. खन्ना ने अपनी पोस्टिंग हेडक्वार्टर पर करा ली थी. करा ली थी का मतलब करा लेना. हनुमान प्रसाद को इस बात से न तो कोई शिकायत थी और न ही हो सकती थी. वह जिले में था. हेडक्वार्टर पर चाहे जो भी होता, एक ही हो सकता था, पर एक बात हनुमान प्रसाद को कचोटती थी. हरिजन कल्याण के बारे में खन्ना भी उतना ही नया है, जितना वह स्वयं. फिर वह उसके काम के बारे में इस तरह के पत्र क्यों लिखता है, बल्कि वह फील्ड में है, सारी आंच बर्दाश्त करता है. फील्ड की समस्याओं को उससे कहीं अधिक जानता है. नीचे की मंजिल में रहने वाला जमीन के ज्यादा नजदीक होता है, छब्बीसवीं मंजिल वाला हवा के. खन्ना जो बोलने पर आता है तो फील्ड में काम करने वालों को खुली गाली देता है. फील्ड में रहने वाले समझते हैं कि हेडक्वार्टर वाले मूर्ख होते हैं. यह नहीं समझते कि उनके सामने पूरा प्रदेश खुली किताब की तरह फरफराया करता है. ककहरा लेकर समझते हैं कि उनसे पढ़ा-लिखा और जानने वाला कोई दूसरा नहीं. हम जानते हैं कि कौन काम करता है, कौन नहीं करता. कौन हराम की खाता है और कौन अपनी पेंदी का खून मारता है. यहां लोग अफसर बन गये हैं. अपने बाबू की तरफ देखते हैं कि वह करे तो काम हो. वही उनको हगाये, वही सौंचाये, हालांकि खन्ना हमेशा वहीं नहीं बना रह सकता था.

इस तरह की बातें हनुमान प्रसाद को अंदर तक कचोट जातीं. जिस तरह खन्ना बोलता था, उस तरह के लोगों के बारे में उसका यह पुख्ता खयाल हो गया था कि उनकी पूरी शक्ति उनकी जबान और ऊंची आवाज में होती है. वह तभी मद्धिम पड़ती है, जब उनसे ज्यादा तेज बोलने वाला दुगुनी आवाज में ऐसे लोगों की बात का जवाब देता है. हनुमान प्रसाद अपनी इस कमी को जानता था. बचपन में जब भी आवाज उठाना चाहता था तो घर वाले टोक देते थे कि बुलंद आवाज से बोलना बद्तमीजी होती है. इसलिए वह बुलंद आवाज में बोली जाने वाली भाषा सीख ही नहीं पाया. वह मिनमिनाना जानता था. उसकी मिनमिनाहट को दूसरे जोरदार जवान और रियाजी गले वाले घोलकर पी जाते थे. अब उसे शंका होने लगी थी कि क्या उसकी बात कभी कोई सुनता है या सुनेगा. अंततः वह इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि बोलना वर्जित है और सुनना तपस्या. और वह अपनी कमी को तपस्या में परिवर्तित करने में लग गया था. अभी तक वह तपस्या उसे रम्मे तक से नहीं जिता पायी थी.

हनुमान प्रसाद की नवविवाहिता पत्नी फिलहाल उसकी ज्यादा बड़ी कमजोरी थी. दफ्तर के बाद पत्नी को छोड़कर कहीं और जाना या किसी का अनाहूत आना उसको थोड़ा परेशान कर देता था, पर ऐसा ज्यादा बार नहीं होता, क्योंकि वह अभी शहर में नया था और दफ्तर में भी. लेकिन उस दिन जब उसे पता चला कि मंत्रीजी की पेशी में रात को दस बजे पहुंचना है तो उसकी समझ में काफी देर तक नहीं आया कि वह क्या करे? हालांकि जाने के अलावा कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था.

■

हस्बमामूल वह समय से घर आ लगा था. घर में घुसते ही वे की तरह दरवाजा बंद करके वह बाहरी अला-बला से सुरक्षित हो गया था. वह दरवाजा कम दहलीज ज्यादा थी. वे लोग थे. मकान पुराने किस्म का था. फिर भी वे उसमें अधिक दबे और सुरक्षित अनुभव करते थे. घर में घुसते ही उसने अपने को ढीला किया और दोनों एक दूसरे में सिमट जाने की मानसिकता में लौटने लगे. लगभग वे लोग लौट ही चुके थे. किसी तरह के व्यवधान की संभावना से वे पूरी तरह मुक्त थे, लेकिन दरवाजे पर एक अजीब बहशीपन से खटखटाये जाने ने उनकी संपूर्ण एकाग्रता को कुचल दिया. वे दोनों आहत थे, हनुमान प्रसाद कुछ ज्यादा. हनुमान प्रसाद पर दरवाजा खटखटाने का वह भय जल्लाद के आ जाने के डर की तरह हावी हो गया था. वह एकदम दरवाजा खोलने के लिए नहीं जा सका. कुछ देर बाद उठा और बड़बड़ाता हुआ दरवाजे की तरफ चलता चला गया. उसका खयाल था, हो सकता है, रम्मे हो, कोई समस्या लेकर आया हो. वह किसी बस्ती से आता है और घंटे भर तक अपने मन की गलाजत निकालता रहता है. वैसे तो वह कम आता है, पर जब आता है तो हरिजनों की बस्ती से लौटता हुआ होता है. उसके पास उन लोगों के विरुद्ध कहने के लिए कोई एक कहानी होती है, जिसे वह बढ़ा-चढ़ाकर कहता है और अपनी जातीय श्रेष्ठता के समक्ष उन सबको नीच सिद्ध करता चला जाता है. हनुमान प्रसाद के पास सुनने के सिवा कोई रास्ता नहीं रहता. जब वह जाता है तो हनुमान प्रसाद एक हारे और त्रस्त व्यक्ति की तरह अपने आपको समेटता हुआ सा उठकर दरवाजा बंद कर देता है.

हनुमान प्रसाद चिल्लाकर उसे घर से बाहर कर देने के भाव से भर गया था. वह अपनी कायरताभरी चुप्पी को भंग क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पर टूट पड़ना चाहता था. वह अपने द्वारा खींची गयी उस बाड़ को फांदकर दूसरी तरफ पहुंच जाना चाहता था, जिससे वह अपनी आवाज बुलंद कर सके.

उसने पूरी तैयारी के साथ दरवाजा खोला. रम्मे नहीं था. एक सरकारी अहलकार था. अहलकार क्या सरकारी हरकारा. अंग्रेजों के जमाने में शायद ये लोग कुछ इने-गिने लोगों के लिए रायबहादुरी, खानबहादुरी के खिताबों के फरमान लाते हों तो लाते हों, पर जबसे अपनी सरकार आयी थी, तब से इनका नाता अच्छी बातों और खबरों से करीब-करीब खत्म-सा ही हो गया था. पगड़ी के एक तरफ लटकी लाल झालर लगातार और बहुत हिल रही थी. हनुमान प्रसाद की नजर पहले उसी पर गयी थी. उसका कद और शरीर रम्मे बाबू से भी बड़े थे. उसे देखकर वह एक कदम पीछे हट गया और उसके बोलने का इंतजार करने लगा. उसने पूछा, "हनुमान प्रसाद, जिला हरिजन अधिकारी. . ."

"कहिए!"

"कहिए नहीं, यह बताइए, कहां रहते हैं."

"आप बतायें, मैं ही हूं."

उसने हनुमान प्रसाद को ऊपर से नीचे तक देखा. फिर दोहराया, "आप ही हैं. . .अच्छा, नमस्ते." रुककर बोला, "क्या आप दफ्तर हो गये हैं, पहले सिविल सर्जन होता था, कलक्टर होता था, जज होता था. . .पुलिस कप्तान होता था. डिप्टी, तहसीलदार, मुंसिफ, कोतवाल होते थे. सारे जिले का काम चलता था. अब— दफ्तरों की फौज है और कहीं कुछ नहीं होता."

हनुमान प्रसाद को उसका इस तरह बोलना बुरी तरह नागवार गुजरा. वह सोचता ही रहा कि उसकी इस बद्तमीजी का मुंहतोड़ जवाब दे, पर इसी बीच उसने बोलना शुरू कर दिया, "खैर सा'ब, सरकार जाने और जनता जाने, हमें तो काम से काम, आपको यानी हरिजन अधिकारी साहब को सर्किट हाउस में मंत्री जी ने रात के दस बजें बुलाया है. पहुंच जायें. इस पर दस्तखत कर दें." वह एक ही सांस में बोल गया.

"हमारे मंत्रीजी."

"मंत्री या तो सबके या किसी के नहीं. . ." अपनी जान में उसने बहुत बड़ी बात कही और हंस दिया.

"अच्छा सा'ब, सलाम," कहकर उसने हाथ फैला दिया. "इनाम-विनाम हुजूर, आखिर आपको तो मंत्रीजी ने याद किया है. पहले कलक्टर भी किसी को याद कर लेता था तो क्या पूछिए."

हनुमान प्रसाद ने कातर भाव से उसे देखा और एक रुपया निकालकर उसके हाथ पर रख दिया. रुपये को उसने अछूत को छूने की तरह पकड़ा और जेब में रखकर बिना नमस्ते किये लौट पड़ा. उसे लौटते देख उसे लगा कि वह ऐसा जिन था, जो आंधी-तूफान मुंह में भर कर लाया था और उसके ऊपर उलटकर लौट गया.

उसने पता नहीं क्यों आवाज देकर पूछा, "ठीक दस बजे!"

वह घूमा और बोला, "साढ़े दस बजे सही! खाना खाकर लौटेंगे, तब मिलेंगे. बड़े आदमियों को खाने में खेत कटने, खलिहान उठने और रोटी बनने जितना वक्त लगता है." वह तेज चलने वाले सांप की तरह कहीं को खिसककर लोप हो गया.

वह एक बदला हुआ चेहरा लेकर अंदर लौटा. पत्नी के चेहरे की ताजगी और कमनीयता के स्थान पर सरकारी दूत के खुरखुरे और भावहीन चेहरे का साया हनुमान प्रसाद के चेहरे पर टिक गया था. पत्नी ने हंसकर पूछा, "चेहरे पर रात के साढ़े आठ से दोपहर के बारह कैसे बज गये."

"तुम्हें मजाक सूझता है. जरा भी दया-माया नहीं. यह नौकरी है...हरिजनी ओटने से भी गयी बीती. इससे तो टोकरी ढो लेना अच्छा. यह साला मंत्री अपने आप तो मोटर पर चलता है, सर्किट हाउस में ठहरता है, दूसरों को चप्पलघसीट समझता है. . . ."

पत्नी तुरंत बोली, "मेरे भाई को गाली क्यों देते हो. धीरे से बोलो, भगवान न करे, वह कभी मंत्री हो."

हनुमान प्रसाद बात को बिना समझे उखड़ गया, "मैंने तुम्हारे भाई को भला क्या कहा. मैं तो अपने भाग्य को रो रहा था. उस बूढ़े खूसट मंत्री की बात कह रहा हूं, जो अपने आप तो मोटर पर चढ़ा घूमता है, दूसरे से कहलाता है कि रात को साढ़े दस बजे काली कोसों सर्किट हाउस मिलने पहुंचो. निकालो कपड़े, उसकी अर्थी को कंधा दे आऊं." पत्नी का चेहरा बदल गया. चुपचाप कपड़े निकाले. बिना कुछ बोले पलंग पर रख दिये. हनुमान प्रसाद फिर अपने मौन तप को लौट गया. दोनों मशीन हो गये. पत्नी अपना काम करती रही और हनुमान प्रसाद अपना. हनुमान प्रसाद को कमीज लेकर जूता चमकाकर पहनने तक में पूरा आधा घंटा लगा.

जूता पहनते हुए वह बोला, "पहली बार मिनिस्टर से मिलना होगा. सुना तो है, भला आदमी है, मुझ जैसे छोटे से अफसर का मिनिस्टर से मिलना, साली शेर की सवारी. पता नहीं खाये या छोड़े. इतना मिनिस्टर से खतरा नहीं, जितना उस खन्ना से है, क्या-क्या भरा हो. भरा हुआ तो मिट्टी का अनार भी आग उगलता है." खड़े होकर हाथ झाड़ते हुए बोला, "अंदर से दरवाजा बंद कर लेना, जब मैं आऊं, तभी खोलना. इसमें बुरा मानने की बात नहीं, नौकरी है. हमारा विभाग ही हरिजन कल्याण विभाग है. यहां सब कल्याण ही कल्याण है. गरीबी का भी कल्याण, बेरोजगारी का भी. . .और इस नौकरी का भी. धत्त तेरे कल्याण की. . .पर रोटी तो इसी कल्याण से चलनी है." वह अंदर ही अंदर कल्याण. . .कल्याण रटता रहा.

▣

हनुमान प्रसाद बोलता-बोलता बाहर की ओर चलता चला जा रहा था. दरवाजे तक पहुंचकर उसे लगा, उसका गला सूख गया है. पत्नी से एक गिलास पानी देने को कहा. पानी आने तक वह पत्नी, मंत्री, रम्मे, हरिजन, खन्ना और अपने पुराने घर की दहलीज के बोसीदा किवाड़ों के बारे में सोचता रहा. सोचने का कोई क्रम नहीं था. कभी इस पर कूद जाता था, कभी उस पर. एक-दो बार उसे वे सब-हरिजन, मिनिस्टर के पास खड़े और उसके खिलाफ शिकायत करते भी नजर आये, जो दफ्तर आते थे और रम्मे उन्हें समझा-बुझाकर या गाली-गुफ्ता करके लौटा देता था. वह सहारा लेकर खड़ा हो गया. फिर उसे दहलीज का दरवाजा तोड़कर बदमाश घर में घुसते और पत्नी के साथ. . .यानी उसे परेशान करते नजर आये. फिर खन्ना मिनिस्टर से खुसुर-फुसुर करता और उसकी ओर देखकर मुस्कराता नजर आया. . . हनुमान प्रसाद को अपने पैरों में एक तरह का कंपन महसूस हुआ. उसकी पत्नी पानी लायी. बिना कुछ बोले पानी पिया और बिना इस बात का एहसास कराये कि उसके पैरों में कंपन है, वह यथा-

••

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शक्ति तेजी के साथ चल दिया. चबूतरे की सीढ़ियों से उतरते-उतरते भी उसने दरवाजा एहतियात से बंद कर लेने और न डरने की हिदायत दी.

दरवाजा बंद हो जाने के बाद भी वह दस-मिनट तक सीढ़ियों के नीचे खड़ा दरवाजे को देखता रहा. जब दरवाजा यथावत बंद रहा और कोई चूं-चूं नहीं सुनाई पड़ी तो उसने रिक्शा की चिंता करनी शुरू की. कहां से ले. वह रिक्शा मिलने के बारे में भी थोड़ा शंकित था. इतनी रात को काली कोसों सर्किट हाउस तक जाने के लिए कोई तैयार होगा भी या नहीं? वह हल्के-हल्के कांपते पैरों से खरामा-खरामा चला. कुछ दूर चलने के बाद उसे एक खाली रिक्शा खड़ा नजर आया. रिक्शावाला नाली के मुहाने पर बैठा था. वह खड़ा रहा. हनुमान प्रसाद को लगा, वह जरूरत से कुछ ज्यादा वक्त ले रहा है. इतना वक्त साधारणतया लगता नहीं, जब तक कोई खास ही बात न हो. उठने से पहले जब वह एक-दो बार हिला तो वह थोड़ा संभलकर खड़ा हो गया और सोचने लगा कि वह उसे चलने के लिए कैसे राजी करेगा, लेकिन उसे ज्यादा जद्दोजहद नहीं करनी पड़ी. उसने कहा और वह मान गया कि बैठो. वह बैठ गया और पैसे के बारे में सोचता रहा. उस बात को लेकर वह अंधकार में था. रिक्शा वाला कुछ भी पैसे मांग लेने को स्वतंत्र था. उस हालत में उसके पास चुपचाप दे देने के सिवाय कोई रास्ता नहीं था. दरअसल वह लड़ने के मामले में कमजोर आदमी था. थोड़ी देर में वह सब कुछ भूल गया था, यहां तक कि इर्द-गिर्द क्या है, रिक्शा कहां से गुजर रहा है—उसे कुछ पता नहीं रहा. बीच-बीच में जब ध्यान आ जाता था तो गर्दन उठाकर जबरदस्ती देखता था कि वह कहां तक पहुंचा. ठीक रास्ते पर ले जाया जा रहा है या नहीं.

▣

मंत्रीजी को उसकी साढ़े दस बजे क्या जरूरत पड़ गयी. जरूर कोई ऊंची शिकायत पहुंची है. उस शिकायत ने ही मंत्रीजी को बुलाने के लिए बाध्य किया है. भला हो गांधी बाबा का... न वो पैदा होते, न यह हरिजन विभाग खुलता. उसके मुंह में रम्मे के लिए गालियां भर-भर आ रही थीं, पर वह दे नहीं पा रहा था. केवल सोच रहा था. वह काम करे, बेचारे हरिजनों को मिलनेवाला पैसा कायदे से बांटता रहे, उनकी रिपोर्टों की फाइल को ठीक-ठाक रखे तो यह साला दिन ही क्यों देखना पड़ता. इस बात से तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि वे हजारों साल से पिसते चले आ रहे हैं, समाज का हिस्सा हैं. न हों, विभाग के नाते, इंसान के नाते भी तो कुछ जिम्मेदारी है ही. रम्मे तो स्वयं भी उनकी विपदा को समझता है, न हो उतना अनुसूचित जाति का, पर जो कुछ भी है... समझता तो है ही. कसमसाहट आती कि आव देखे, न ताव, उसके दोनों हाथ पकड़कर दो-चार धौल जमाये कि हरामखोर के बच्चे, इतनी ही बड़ी जाति का है तो इस विभाग में नौकरी करने क्यों आया, जा कहीं जात बदलकर सत्यनारायण की कथा बांच. यहां रहेगा तो सब कुछ करना होगा. इस जात को गांठ बांधकर खूंटी पर टांगकर आया कर. फिर लगता, उसके पैर पकड़ ले और कहे कि मैं हाथ जोड़ता हूं, तू काम कर... इन बेचारों को इस तरह मत जलील कर. तेरा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, मेरी नौकरी चली जायेगी. होते-होते वह सरकार द्वारा चलायी जा रही कल्याणकारी योजनाओं की विफलता की आशंका से घिरा लगता और उसे लगता कि वे लोग डंडे-बेलचे लिये उसे घेरे खड़े हैं. फिर खन्ना नमूद हो उठता. मंत्रीजी के पीछे उसकी परछाईं हिलती नजर आने लगती.

हनुमान प्रसाद ने जब गर्दन उठाकर देखा तो रास्ता बहुत सुनसान नजर आया. सड़क, सड़क के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे खंभे और बिजली. बस! रिक्शा जंगल से गुजरती रेल की तरह सट्टा-सट्ट. वह पत्नी के बारे में सोचकर एकाएक भावुक हो उठा. फिर वह रिक्शेवाले के भय से भयभीत हो गया. कहीं भी रिक्शा रोक कर कह सकता है, निकालो जो कुछ है. फिर लात मार कर कहेगा जाओ भागो. वह सिकुड़ गया. हो सकता है, हरिजन ही हो और परेशान हो. परेशानी में सब कुछ किया जा सकता है. समझाये से भी नहीं समझेगा. कौन जाने, कपड़े ही उतरवा ले. वह नंगा कहां जायेगा? मंत्री के पास या घर. इससे तो बेरोजगार अच्छे. पत्नी क्या बेरोजगारी के आलम में भी उसी भाव से रह सकती है? बेकार की बातें सोचते-सोचते दिमाग खराब हो गया. नौकरी तो सब करते हैं, मिनिस्टर, खन्ना, रम्मे? पत्नी क्या अलग है. वह उससे पहले चाहेगी कि उसका पति नौकरी करे.

▣

रिक्शा की रफ्तार मद्धिम पड़ने लगी तो उसका खयाल पक्का होने लगा. वह अपनी कुव्वत-ए-बाजू का अंदाजा लगाने लगा, अगर वाकई रिक्शे वाले ने कुछ ऐसा-वैसा किया तो क्या वह उसका सामना कर पायेगा. यह तो निश्चित है कि वह उससे जबर पड़ेगा. हम लोग दिमागी काम करते हैं, ये जिस्मानी. जिस चीज को ज्यादा इस्तेमाल करो, वही मजबूत होती है. हमारा दिमाग है. मैं भी दंड-बैठक लगाता होता तो इसे पटक देता. पटक भी न पाता तो कम-से-कम कब्जे में तो नहीं ही आता. उन लोगों की ताकत अंदर हड्डियों में रहती है. हम लोगों की कमजोरी उजागर रहती है.

हनुमान प्रसाद ने अपने उस पूरे चिंतन से अपने आपको बाहर निकालकर पूछा, "क्यों भाई, क्या बात है?" उसने गर्दन हिलाकर "कुछ नहीं" का संकेत किया. "धीमे क्यों पड़ गये?"

वह गर्दन उसकी तरफ घुमाकर बोला, "आप लोग बैठने की नौकरी करते हैं और बैठने की ही तनख्वाह पाते हैं. फिर भी थक जाते हैं... मैं तो फिर भी घसीटे चला जा रहा हूं."

"अच्छा, तो थक गये थे. मैं समझा, कोई और बात है. दर-असल मिनिस्टर साहब ने बुलाया है. वैसे चाहे ये मिनिस्टर ही हों, पर बिना हम लोगों के काम नहीं चलता. फोन करेंगे, आदमी भेजेंगे. जब काम नहीं कर सकते तो क्यों मिनिस्टर बन गये. कोई और काम देखते, पर कौन समझाये. मिनिस्टर बन गये तो अफलातून! खैर, उनसे ठीक दस बजे मिलना है. इन लोगों के नाक पर दिया जलता है, काम भी हमसे ही लेंगे और आंख भी हमें ही दिखायेंगे..."

रिक्शावाला थोड़ा उखड़-सा गया, "मिनिस्टर हमारा क्या करेगा? ज्यादा-से-ज्यादा सिपाही से धक्का दिलवाकर बाहर निकलवा देगा. निकलवा दे. रोज साले सिपाही धक्का देते हैं. "हट बे, यहां मत खड़ा हो. यह कोई खड़े होने की जगह है."

• •

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...की नहीं तो क्या तेरी अम्मा के बैठने की जगह है. सोचते हैं, ...न बेइज्जती होती है. धक्का-मुक्की, गाली-गलौज तो अपने ...खों के जमाने से सहते चले आ रहे हैं. लो, उतरो बाबू, मिल लो ...निस्टर से."

"यहां तक लाये हो तो अंदर तक ले चलो. रात का वक्त है."

"हमारे लिए तो दिन है ना बाबू."

अंदर सन्नाटा था. सीढ़ियों पर एक बड़ी बत्ती जल रही थी. ...मान प्रसाद ने रिक्शेवाले से कहा, "तुम्हें ठहरना होगा."

"कितनी देर लगेगी?"

"जितनी भी लगे ... मिनिस्टर का मामला है."

"पैसे?"

"जो ठीक होंगे."

"खुलना ठीक है. देर का मामला है. आप तो मिनिस्टर के ...लाये आये हो, मैं आपका लाया हुआ हूं."

"रुपया दो रुपया और ले लेना."

"आने का डेढ़, जाने का डेढ़—तीन! रुकने के दो. कुल पांच."

हनुमान प्रसाद सीढ़ियों पर धीरे-धीरे चढ़ा. उसके पैरों में ...र से कंपकंपी लौट आयी थी. उसे थोड़ा-थोड़ा वहम था कि हो ...ता है, गिर जाये. पैरों का कांपना और गिरना अलग बातें होने ...वजह से वह गिरा नहीं. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ...ी आया हो और चिड़िया का बच्चा पर मारने को नहीं. मंत्री ...होना भीड़ और शोर से सिद्ध होता है. भीड़-शोर न हो तो मंत्री ...हो सकता है.

सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद हनुमान प्रसाद रुका, इधर-उधर ...ा, सूंघा और जांचा. दबे-दबे पांव अंदर की तरफ बढ़ा. ड्राइंग ...म में सोफे पर एक लंबा आदमी सो रहा था. उसका सोना, ...रे के बराबर था. मुंह ढका था, पर कपड़े इतने अस्त-व्यस्त थे कि ...ह सोये से ज्यादा नंगा था. हनुमान प्रसाद की समझ में नहीं आया ...वह उस आदमी के उस नंगेपन के साथ क्या करे. पहले उसे ...ाये या पहले उसे ढके या फिर उसकी तरफ पीठ करके बैठ ...ये, जिससे उसका नंगापन नजर न आये. नंगेपन को इतनी ...ानी से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, खासतौर से इस ...ार के नंगेपन को.

...ीजी के आने में विलंब का वह ज्यादा मुस्तैदी से शिकार ...ता जा रहा था. बारह बजे आये तो क्या वह तब तक इसी तरह ...ा इस नग्नता को वहन करता रहेगा? उसकी पत्नी! वह भाव ...ल-सा हो गया. जब वह पहुंचेगा तो वह ज्यादा जोर से उसके ...ने से चिपक सकती है. तब ...! उसका ध्यान उस आदमी के ...पन की तरफ एकाएक चला गया. वह हल्का-सा मुस्कराया, ...र तुरंत गंभीर हो गया. वह नहीं चाहता था कि कोई उसकी ...राहट देखे और संदर्भों को समझे.

"उसे चलना चाहिए." उसने अपने आप से बुदबुदाकर कहा.

"कहीं कोई परेशानी न खड़ी हो जाये. दरवाजे कमजोर हैं. ...हर के दबाव को रोक नहीं पाते. वह चिंतित हो आया. इस तरह ...ग जो अपने को ढककर नहीं रख सकते, कुछ भी कर सकते हैं. ...सकी चिंता पत्नी और आदमी के नंगेपन पर टिक गयी.

लघुकथाएं

■ वीर राजा

फांसी

फांसी से पहले जेलर कैदी के पास गया. कैदी एक लंबे समय से कई बार जेल में आ चुका था. वह हर बार निर्दोष छूट जाता, लेकिन इस बार उसे फांसी की सजा हुई.

जेलर उसके अच्छे बर्ताव से बहुत खुश था. दूसरे कैदियों की तरह उसने कभी जेल का नियम न तोड़ा और न ही कभी किसी से झगड़ा किया.

जेलर ने कहा, "मुझे बहुत दुःख है कि तुम्हें फांसी मेरी जेल में हो रही है. तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ."

"फंदा तो गले में पड़ना ही था. अफसोस इस बात का है कि मैंने दस कत्ल किये. हर बार साफ बरी हो गया. इस बार किसी को गर्दन नहीं मरोड़ी. फिर भी तख्ते पर लटक रहा हूं. क्या फांसी मुझे पहले जुर्मों के आधार पर नहीं हो सकती?" ■

खुद-ब-खुद

एक दरोगा का तबादला दूसरी जगह हो गया. उसका परिवार वहीं रहा.

कुछ दिन बाद उसके घर चोरी हो गयी. आकर वह दरोगा से मिला. माल बरामद कराने की ताकीद करके लौट गया. दो महीने बीत जाने पर भी माल उसके घर न पहुंचा.

इसी बीच दूसरे दरोगा की दो भैंसें चोरी हो गयीं. वह बहुत परेशान हुआ. किसी को बताने में भी शर्म महसूस हुई. वह चुपचाप मोटर साइकिल लिये तफतीश के बहाने भैंसें ढूंढ़ता रहता.

एक दिन वह उस दारोगा के पास पहुंचा, जिसके घर चोरी हुई थी. उसने अपनी भैंसें चोरी होने की बात उसे बतायी. सुनते ही वह बोला, "तुमने मेरा माल तो बरामद किया नहीं, खैर अगर तुम्हारा माल इस इलाके में हुआ तो खुद-ब-खुद तुम्हारे यहां पहुंच जायेगा."

इत्तिफाक की बात थी कि दूसरे दिन दोनों दरोगाओं के घरों में माल सही सलामत पहुंच गया था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन मंत्रीजी...! अगर चला गया और मंत्री जी ने आकर पूछा तो...? जरूर निकाल दिया जायेगा. नौकरी जितनी मुश्किल से देते हैं, इन लोगों के लिए निकालना उतना ही आसान होता है. न जाये तो मुश्किल, रुके तो मुश्किल. करे तो क्या करे. कुछ देर उसका हाथ माथे पर बना रहा.

क्या वह उन लोगों के हाथों में सिर्फ मिट्टी का खिलौना है, चाहे जब गिरा कर तोड़ दें? उसके दिल में अपने प्रति एक तरह की घृणा बढ़ने लगी. वह गाली देने को आतुर-सा हो उठा, लेकिन अपने आपको कहां तक गाली दे सकता था. दरअसल ऐसा करना अपने प्रति असहयोग करना होता है. उसकी नजर फिर उस नंगे आदमी पर गयी. वह और बुरी तरह से नंगा हो गया था. मात्र एक करवट लेने से ही ऐसा हो गया था. उसको किसी तरह भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था. बल्कि उसके कारण देखने वाले के अंदर उस तरह का या उससे भी ज्यादा भयंकर नंगापन उभर सकता था. वह चाहकर भी उसे ढक नहीं सकता, क्योंकि उसकी धोती कमजोर और नाकाफी थी. ढकने पर और ज्यादा भदेसपन आ जाता. अब तो जो कुछ था, सामने था. ढका हुआ नंगापन कुछ ज्यादा हो जाता है.

वह उसे घुमाने-फिराने लगा था, अंदर भी, बाहर भी. मंत्री जी का होना, उनके न होते हुए भी उसकी पीठ में गड़ रहा था. इस एहसास ने रम्मे बाबू और खन्ना के अस्तित्व को भी एक नाम दे दिया था. वे भी उसके इसी तरह गड़ते रहते थे. वे हरिजन, जो उसे कुछ नहीं कहते थे, पर निराश नजरों से उसके दफ्तर को देखते हुए निकलते थे, उसके भीतर गड़े हुए तो नहीं थे, पर किसी समय भी आर-पार निकल सकते थे.

▣

इस बार हनुमान प्रसाद उस सोते हुए आदमी के प्रति और अधिक असहिष्णु हो उठा. वह उसे ढक देने के लिए आतुर हो गया. उतावलेपन से बढ़ा. ढकना शुरू भी किया, पर वह आदमी हड़बड़ा कर उठ बैठा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "कौन-कौन...? चोर...चोर...!"

हनुमान प्रसाद ने हिलाकर जगाने की कोशिश करते हुए कहा, "चोर नहीं, मैं हूं हनुमान प्रसाद--जिला हरिजन कल्याण अधिकारी."

उसने जब उसकी तरफ देख लिया और चिल्लाना बंद कर दिया, तब बोला, "कपड़े ठीक करो."

वह इस तरह जगाये जाने से उत्तेजित था और हनुमान प्रसाद के प्रति नाराजगी और कसमसाहट अनुभव कर रहा था, "अरे साहब, हम तो सोते-सोते उघड़ गये. लोग तो यहां हर किसी के सामने उघड़े रहते हैं. ये सर्किट हाउस है जनाब! फिर आपको मुझसे मतलब...? बताइए आपको क्या काम था?"

हनुमान प्रसाद के मन में थोड़ी घबराहट होने लगी. वह बात को समाप्त करने के खयाल से तुरंत बोला, "मंत्रीजी ने दस बजे बुलवाया था. उनके दर्शन करने आया था, कब तक लौटेंगे?" दर्शन शब्द कहने के बाद उसने पुनः सोचा. गलत कहा या सही.

"मंत्रीजी," कहकर वह हंसा. फिर अपने आपको धोती से ढकने में लग गया. जब वह अपने को ढक चुका तो बोला, "कहां हैं मंत्री जी?" जिस तरह वह हंसा था, उससे वातावरण में थोड़ा बद... जरूर आ गया था, लेकिन जब तक वह बोला नहीं, तब तक ...मान प्रसाद अंदाज नहीं लगा पाया कि वह क्या कहना चाह... या क्या कहेगा. कुछ देर बाद उसने कहा, "यह तो दरबा ही मं... का है. जानते हैं दरबा...? आये, गुटुरगूं...गुटुरगूं किया ... फुर्र. पहले तो मैं डरता था, अब...वे लोग भी मुझे सोते को ... देख जाते हैं. मुझे क्या कहेंगे, जब मैं उन्हें कुछ नहीं कहता. इसी... बाबू ढकना है तो दूसरों को ढकने के बजाय अपने को ढको. ... को ढकोगे तो क्या जाने वह और नंगा हो जाये...मंत्री लोग ... बात को जानते हैं...वे इस चक्कर में ही नहीं पड़ते."

हनुमान प्रसाद की समझ में नहीं आया, वह क्या करे. ... फिर पूछा, "मैं पूछ रहा था, हरिजन कल्याण विभाग के मंत्री ...

"अरे हरिजन कल्याण मंत्री हो या आबकारी. सबकी ... लगी है." रुककर बोला, "वो रम्मे बाबू के मंत्री से मतलब है ... चले गये नौ ही बजे." फिर पूछा, "आप रम्मे के अफसर हैं ना...

वह उठा नहीं. थोड़ी-सी कमर सीधी करके बोला, "अ... तो नमस्ते." फिर बोला, "उनका काम जल्दी समाप्त हो ग... ड्राइवर से बोले, चलो ग्यारह बजे तक लखनऊ पहुंच जा... आपकी जगह रम्मे बाबू सलाम कर गये. हम झूठ कहें तो पाप के ... होंगे...आपके बारे में तो हम जानते नहीं, पर रम्मे बाबू एक ... कांटे का आदमी! गैर हरिजन को हरिजन बनाये और हरिजन ... गैर हरिजन. दोस्त का दोस्त, दुश्मन का दुश्मन. आप चाहे ... अफसर हों, अगर दुश्मन हो गया तो समुंदर के तल तक ... छोड़ेगा. बड़े आदमियों से बात करने का उसे बड़ा मलका... हंसिया की तरह जबान चलती है."

वह पूरी तरह उलझ गया था. समझ में नहीं आ रहा था ... यह क्या कह रहा है. बिना सोचे-समझे पूछा, "रम्मे बाबू मंत्री ... से..." पहले हकलाया, फिर वाक्य पूरा किया, "...क्या हमारे ... में कुछ कह रहे थे?"

"बाबू साहब, वे किसी के बारे में कुछ नहीं कहते और स... बारे में कहते हैं. आपके बारे में कहा या नहीं कहा, यह हमें ... मालूम नहीं, पर कहा ही होगा. डरते-वरते वे किसी से नहीं. ... दम बांह में चाहिए था, अब जबान में चाहिए. जिस आदमी ... दिल से डर निकल जाता है, उसी जबान में दम होता है. डर ... साला आदमी को मुरगा बनाता है...डर न हो तो साला मु... शेर बन जाये." वह आदमी अब बिल्कुल नंगा नजर नहीं आ ... था. उसकी आंखों में नींद भी उतनी ज्यादा नजर नहीं आ रही ... हनुमान प्रसाद की जान पर बन रही थी. वह बोलता जा रहा ... "अरे, इन लोगों को वहां तो काम नहीं, घड़ी में यहां और घड़ी में ... उनका डर निकल गया. हम यहां से मिनट भर को जायें तो आ... हो जाती है. जिस रोज हमारा डर निकल जायेगा तो हमारी ... से जग परलों (प्रलय). तभी यहां सोते हैं, जब तक दिल में ... है. पहले ज्यादा डर था तो नींद नहीं आती थी, सोते-सोते उ... की बात तो और है, अब डर कम हो गया तो खुला-ढका सब बराब...

हनुमान बाबू ने अपनी बेचैनी को छिपाते हुए पूछा, ... आपको मालूम नहीं, वो क्या कह रहा था?"

पृष्ठ ५८ पर जा...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी को लेकर आमतौर पर हमारी जहनियत बहुत रस्मी हुआ करती है. अनजाने हम उसमें शरीक भी हो जाते हैं--"अपने विश्वास की वजह से नहीं, जितना एक चलती आयी आदत या बन गये संस्कार से. . .दरअसल, हम सब शहादत के आदी हो गये हैं, सपनों की शहादत या इच्छाओं की शहादत."--मीनाक्षी पुरी ने अपनी कथाकृति 'सात फेरे अधूरे' (सारिका–1980, अंक–2) में शादी की सप्तपदी के अधूरे होने के कुछ आयाम दिये थे. अब प्रस्तुत है उन्हीं सवालों से जूझती हुई संवेदना लिये राजी सेठ की ताजा कहानी.

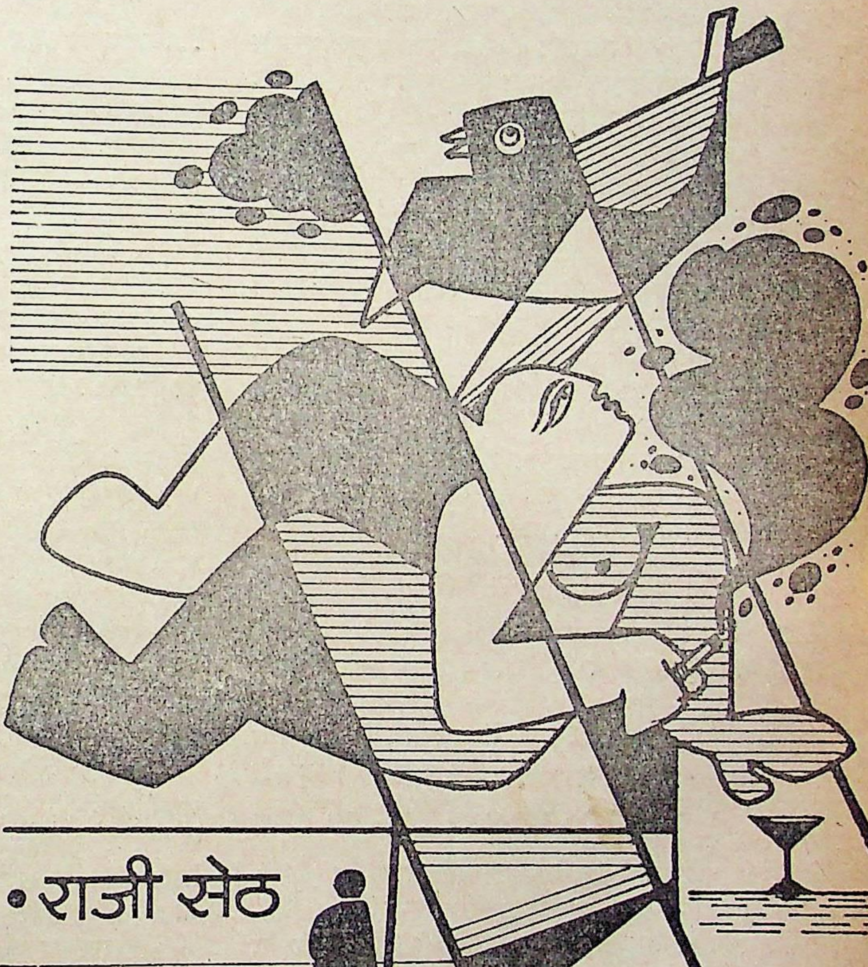

मेरे लिए नहीं

• राजी सेठ

भास्करन शीशी से उड़ेलकर दवा का कप थमाते-थमाते उसके पलंग के सिरे पर बैठ लिया.

दवा मुंह में उड़ेलकर कप खट् से उसने पास की मेज पर रखा और तमतमाते हुए बोली, "हाउ डेयर यू. . . .नाऊ प्लीज सेयर माय बेड. . . .आय कांट स्टैंड इट!"

उसकी आंखों से निकलती आग. ऐसी आकस्मिकता. दूसरे दोनों मित्रों का सामने बैठे होना और भास्करन पर घड़ों पानी पड़ना.

भास्करन का वहां बैठ जाना क्या मात्र अपनी इच्छा से प्रेरित था?

उस बैठने में यह भी शामिल था कि उस कमरे में केवल दो ही कुर्सियां थीं और उस पर क्रमशः जयरामन और सक्सेना बैठे थे. उसमें यह भी शामिल था कि वह उन लोगों से जरूरत से ज्यादा खुलकर व्यवहार करती थी जिससे ऐसे किसी परहेज पर ध्यान नहीं जाता था. उस सीमा का, जिससे आगे जाना निषिद्ध है, अनुमान ठीक से, नपे-तुले ढंग से नहीं हो पाता था.

उसकी बीमारी. . . परदेश. . . अकेलापन. . .के मिले-जुले एहसास से उपजे एक सहज सौहार्द से भरकर और कुर्सी के अभाव को स्वाभाविक रूप से लक्ष्य करके ही उसने ऐसा कुछ कर डाला था. ऐसा कुछ करते, अपनी समझ से, उसे कुछ अनुचित भी नहीं लगा था. एक प्रकार का संस्कार मन में ऐसी बातों को लेकर जरूर था, परंतु वह यहां, इस स्थल पर, उसके साथ नहीं जुड़ता था. वह, जो अक्सर उनके बीच बैठकर सिगरेट भी पी लेती थी और शराब को भी निषिद्ध नहीं मानती थी.

यों भी, वह ऐसा न करता तो क्या करता. उस कमरे में, जहां दो कुर्सियों पर दो व्यक्ति और पलंग पर वह स्वयं विराजमान थी, कहीं किसी दीवार या कुर्सी से टिककर खड़ा रहता परिचालक की तरह?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे मुखर तिरस्कार से उसका भीतर-बाहर तिक्त हो आया. ठेस भी लगी. सोचा भी—कि वह इस सारे कार्य-व्यापार को, मेल-जोल को, स्वतंत्रता से रातों-रात बतियाते होने को, जीप की मीलों लंबी इस शौकिया दौड़ में बांह पकड़कर घसीट लिये जाने को किस दृष्टि से देखे?

प्रशासकीय अकादमी में ट्रेनिंग पूरी करके असिस्टेंट कलेक्टर के पद पर जब वह अपनी पहली पोस्टिंग पर शहर में आयी तो जरूर एक अजूबा थी. सतत आंखों के सामने, पर पकड़ से बाहर. सड़कों पर कभी एक खतरनाक तेजी से जीप दौड़ाती. कभी कबाड़ी बाजार में जमीन पर बैठकर 'ओरिएंटल' के नाम पर बेतुकी चीजें खरीदती. कभी क्लब में धुत्त नाचती और कभी पं. रविशंकर के सितार के कार्यक्रम में सिर ढंककर, आंखें बंद करके, अपने को एक कोने में खामोशी से स्थापित करती. मित्रों के बच्चों से उसका जुड़ाव अटूट. उनके साथ शतरंज खेलती, नर्सरी राइम्स गाती, मौका पड़ने पर बराबरी से लड़ती-झगड़ती और कॉमिक्स के ढेर में खोई दीखती. . . .उस समय वह उस वयस्क दीखने वाले संसार से एकदम बेगानी हो जाती, जैसे वही उसका अपना मौलिक वास्तविक संसार है, शेष सब तो उस पर लाद दिया गया है. ऐसी पद-प्रतिष्ठा, ऐसी उन्मुक्तता और इस तरह बेमतलब छिटक देने की संकीर्णता.

सोचते-सोचते भास्करन का मन नये सिरे से कड़वा गया.

"आय टेक योर लीव," कहकर वह गेस्ट-हाउस के दरवाजे को झनझनाता हुआ बाहर निकल गया.

▣

वह बीमार थी, अत: उसके ऑफिस आने की अगले दिन कोई आशा नहीं थी. वह बीमार न होती तो वह वहां मरने ही क्यों जाता. . . .!

शायद जाता. . . .उसके व्यवहार में भास्करन के लिए एक विशिष्ट आकर्षण-आमंत्रण था. इसमें संदेह नहीं, हालांकि इसे समझने में देर जरूर लगती थी, क्योंकि अकुंठ उन्मुक्तता उसका स्वभाव था.

जो भी हो, वह वहां नहीं जायेगा. उसकी पूरी तरह अवहेलना करेगा, उसने निश्चय कर लिया था. मन में कभी कहीं उस छोटी-सी बात पर अपने इतना क्षुद्र हो जाने की स्थिति खटकती भी थी, वह भी उसकी बीमारी की अवस्था में, परंतु जो बात मूल में तेल की बूंद भर लगती थी, प्रभाव में पानी की सारी सतह को तिरमिरा देने वाला फैलाव बन जाती थी.

सक्सेना ने तीसरे दिन बताया, उसका ज्वर चेचक के हमले की भूमिका थी. वह अब पूरी तरह उस रोग के शिकंजे में है.

यह भी, कि उसने बुलवाया है भास्करन को. जयरामन ने यह भी जोड़ा कि, "वह उस बीमारी की अवस्था में तुम्हारे घर शिफ्ट करना चाहती है, क्योंकि तुम्हारा घर ही रेगुलर घर है —ड्राइंग रूम, बेड रूम वाला. . . .हम लोग तो वैसे भी. . ."

जयरामन सुपरिंटेंडेंट कस्टम्स था और सक्सेना ए. एस. पी. दोनों एक प्राइवेट गेस्ट-हाउस में रह रहे थे.

घुल गया कलुष, पर उसकी जगह चिंता, आशंका ने ले ली. शहर कोई इतना बड़ा नहीं था, प्रोबेशनर्स की यह मुक्त मित्र-मंडली जानी भी जाती थी. . . .फिर भी ऐसा कदम. . .

उसका फैसला अटल था—लगभग एकतरफा, "यहां दिक्कत होती है". . . ."बैरे नहीं सुनते". . . . "अकेला लगता है". . . "समय नहीं कटता". . . ."क्यों! घर से किसी को क्यों बुला लें . . . .आय टोल्ड देम आयम आन माय ओन. . . .सुख में, दुख में, बीमारी में, आराम में, मैं अपनी देखभाल कर सकती हूं. शहर संभालती हूं, अपने को नहीं संभाल सकती."

"संभाल सकती हैं तो यूं अपने को मुझ पर थोप क्यों रही हैं . . . .पूछा तो होता कि मैं इसके लिए तैयार भी हूं या नहीं." एक छोटी-सी लपट, उस तिरस्कार के प्रतिशोध में, मन में कहीं लपलपायी थी, पर इतना धृष्ट उससे हुआ नहीं गया.

लगा, वह उसकी दुविधा समझ रही है, फिर भी ढिठाई पर उतारू है. कहती रही, "प्लीज, यह तौलिया भी उस बास्केट में रख दो". . . ."वह नीचे के खाने में पड़े कपड़े भी. . . .यह स्लीपर भी बैग में, नीचे ठूंस देना. . . .होप, यू डोंट माइंड. . . आयम सो हैल्पलेस." उसका चेहरा बुखार से तमतमा रहा था. . . लाल-लाल चकत्ते सब कहीं उभर आये थे.

वह सोच रहा था आगे के दिनों का त्रास—घर में यह बीमारी की पोटली. . .शहर वालों की कानाफूसी और मित्रों की ईर्ष्या. .

चार-पांच दिन तक तो वह एकदम निढाल पड़ी रही. वह छुट्टी पर रहा, उसकी सेवासुश्रुषा में पगा. कितनी अजीब बात थी, जब वह घर में थी तो उसके साथ होना कुछ और तरह का लगता था—उत्तरदायित्व, दूरी, शिष्टता, शालीनता, औपचारिकता की अधिक जरूरत.

बुखार उतरने लगा था. दानों के रंग भी पलट गये थे. कई बार उसे ध्यान आता, अब उसकी बारी है, छूत से वह बच नहीं सकता. इस चिंता में एक बार पास वाले होमियोपैथी से 'प्रिवेंटिव डोज' भी ले आया था. छूत के डर से जरूरत से हाथ खींच लेना, या उस चिंता को प्रकट करना उसे अभद्र लग रहा था.

बुखार उतरने पर बस एक ही दिन प्रतीक्षा की थी उसने. अपनी थोड़ी-सी चीजें उसने स्वयं बटोर ली हैं, भास्करन ने ऑफिस से लौटने पर देखा. उसे बोलने का मौका दिये बिना वह बोली, "सारा घर 'डिसिन्फेक्टेंट' कराना पड़ेगा तुम्हें. . .दैट इज व्हाट आय हैव डन फॉर यू इन रिटर्न."

निरापद-सा परिहास उसके मन में मचला, पर कहा उसने मात्र इतना ही, "मैं बहुत सख्त जान हूं, तुम चिंता न करो. . . ."

चलते समय भास्करन की ओर पूरी तरह उन्मुख होकर उसका हाथ, हाथ में लेते हुए बोली, "कोई और मुझे इस तरह सह नहीं सकता था—नन एल्स, आयम ग्रेटफुल. . . .हार्टिली ग्रेटफुल फॉर एवरीथिंग यू हैव डन फॉर मी."

ऐसी संजीदगी में से उसका हो गुजरना भास्करन के लिए नया दृश्य था. आवाज के खनकते खरेपन ने उसे कहीं भीतर से छू लिया. उस क्षणांश के आवेग को छिपाने के लिए ही वह बोला, "थोड़े दिनों के लिए घर क्यों नहीं चली जाती."

"नहीं! घर में कभी इस तरह नहीं जाती हैल्पलेस होकर . . . .मैं उन लोगों से कह चुकी हूं, "आय केन लुक आफ्टर माय सेल्फ. . . .जब मैं उनकी बात नहीं मानती तो वह भी मेरी चिंता क्यों करने लगेंगे."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी कौन-सी बात? वह पूछने को हुआ पर चुप रहा. ...न-सी बात, कब, उसके साथ सीमा का अतिक्रमण हो जाती है, ...ा नहीं लगता.

तब उसे समझता होता तो समझ जाता—'शादी की बात'. ...ब तक उसे स्वयं भी मालूम नहीं था कि वह ऐसे किसी इरादे ...पूर्णतया उदासीन है.

मालूम होता तो अपने आवेगों पर कुछ वैसी ही लगाम वह ...गाता, उन्हें शादी की प्रत्याशा से बंधने क्यों देता?

भास्करन उसे वापस गेस्ट-हाउस छोड़ने गया था. कमरे में ...न्दो चक्कर मारकर वह धम्म से कुर्सी पर बैठ गयी थी.

"इट्स सो वैरी डिफरेंस हियर. . . .नहीं?"

"हूंऽऽ." भास्करन खिड़की खोल रहा था. उसने पलटकर ...खा. आवाज में से जो कुछ भी छन रहा था, वह उदासी थी या ...कान या निरीक्षण?

उसका चेहरा बेहद शांत और संजीदा-सा था, पर किसी ...हरे आवेग की जकड़ से परे. वह दरवाजे की जाली के पार कहीं ...र देख रही थी.

भास्करन ने मन में तय कर लिया था, वह खाना यहीं उसके ...थ खाकर जायेगा. इस सांवले झुटपुटे में तो हर किसी को अपना ...र भी बेगाना लगने लगता है.

एकदम मुक्त, सिगरेट-शराब की अभ्यस्त, क्लब में शाम ...ो बजती तेज धुनों पर नाचने की पहल करने वाली महिला, ...सके घर, इस बीमारी में एक सभ्य दूरी और आभिजात्य के पूरे ...पचारिक संयम और संकोच के साथ रही थी. एक निरीह बच्ची ...ी तरह वह दवा लेती, पथ्य लेती और जो जरूरत होता उसे ...हद नम्रता से मांगती. भास्करन को उस समय एक बीमार बच्चे ...े साथ होने का एहसास होता था. तमतमाई हुई बेचैनी में उसे ...धर-उधर करवटें बदलते देख वह ममत्व से पूछता—"क्या ...हुत दर्द है?"

"हां! है तो सही. . . .इट्स इनएविटेबल. . . .है न?" वह ...क क्षीण-सी हंसी हंसती जैसे उसका मन रखने के लिए हंस रही ...ो. उसके छुट्टी लेकर घर बैठने के मुआवजा स्वरूप, नहीं तो ...स्पताल पड़े रहना उसे आरामदेह लगता.

उसके घर आने के पहले ही दिन भास्करन ने पूछा था, "मैं ...ड्रूम में सो गया तो कुछ पता नहीं लगेगा कि तुम्हें कुछ चाहिए ...तुम्हें क्या ठीक लगेगा?"

निर्णय उसने जानबूझकर उस पर छोड़ दिया था—इच्छा, ...औचित्य, जरूरत को जताये बिना. . ..उस दिन की घटना वह ...भी तक भूल नहीं पाया था, यह उसे तब पता लग पाता, ...ब ऐसे स्थलों पर, सारी मिट्टी ढाहकर वह स्मरण पूरी तेजी ...े एक रोपी हुई कलम की तरह सिर उठाकर सामने खड़ा हो ...या दीखता.

"तुम्हें सोफे पर सोने में तकलीफ तो जरूर होगी, पर मेरे ...लिए तो अच्छा ही है."

भास्करन को पहली बार यह एहसास एकाएक और पूरी तेजी ...े हुआ कि अनिश्चय या संभ्रम उसका दुर्गुण नहीं है. ज्यादातर ...बातों में वह स्पष्ट है. तब तक वह यह नहीं जानता था कि हमारी ...तरह वह—अनिश्चयों, दुविधाओं की जमीन पर नहीं खड़ी—

लघुकथा

रिश्तेदार

■ लक्ष्मीनारायण वशिष्ठ

इतवार का दिन था. बाजार बंद होने के कारण सेठ हीरालाल अपने साथियों के साथ ताश खेल रहा था. तभी एक अर्थी दिखाई दी, जिसमें मुश्किल से दस-बीस लोग थे.

"जाने कौन मर गया?"

"होग्गो कोई मास्टर-फास्टर. कोई बड़ो आदमी होतो, तो हजारेक की भीड़ होती," हीरालाल बुदबुदाया.

अर्थी और पास आयी. एक से न रहा गया. पूछ ही बैठा, "क्यों भाई, कौन मर गया?"

"मास्टर बिहारी."

"कौन मास्टर बिहारी! नंबर चार वालो तो नईं . . .?" हीरालाल ने घबराकर पूछा.

"हां! वही! नंबर चार वाला बिहारी मास्टर."

हीरालाल की आंखों से झर-झर आंसू झरने लगे.

"क्यों, कोई रिश्तेदारी थी क्या?"

"हांऽ! मेरो डेढ़ सौ रुपैया बांक्की थो जा पे. डूब गओ."

सभी के चेहरे उतर गये थे. □

कुछ आधुनिक, कुछ परंपरागत. हर चीज के लिए उसका रवैया साफ है, भीतर-बाहर एकमत, एकरस.

"नहीं, मुझे कोई तकलीफ नहीं," कहकर वह चादर और तकिया उठा लाया. रुख की स्पष्टता की राहत उसे महसूस हुई. यह स्थिति कि उसका कहां सोना उचित है, उस जैसे व्यक्ति को घंटों सोच में उलझाये रख सकती थी.

उस क्षण उसे यह भी लगा कि उसके इतना मुक्त, इतने कुंठारहित होने का कारण भी यहीं कहीं इसी बिंदु पर है—यह सोचने और करने के तादात्म का बिंदु. यह भी कि उसका चेहरा द्वंद्वों में बंटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े चेहरा नहीं है. भीतर की किसी न किसी हलचल को हर समय संभालते होने की बेचैन कुशल परिपक्वता उसके चेहरे को छू तक नहीं गयी है. वह था तनाव-खिंचाव-विहीन, निर्दोष बालसुलभ चेहरा.

"तुम बेफिकर होकर सो जाओ," वह अचानक बोली, "मुझे अगर जरूरत होगी तो तुम्हें पुकार लूंगी."

"हां! हां!". . .भास्करन ने अपने में लौटते हुए अचकचा कर कहा. नाइट बल्ब उसने जला दिया और स्वयं सोफे पर लेट गया. चादर ओढ़ने की उसकी इच्छा नहीं थी, परंतु यूं बिना चादर ओढ़े उसी कमरे में अपना लेटे होना उसे अच्छा नहीं लगा. वह अधलेटा-सा पहले उससे इधर-उधर की बातें करता रहा. दोस्तों की, अकादमी की. वह उससे तीन साल सीनियर था. उसी अकादमी से दीक्षित होकर आया था. यहां डी. डी. ओ. के पद पर था.

जरा ही देर में भास्करन को लगा कि बात करने, सजग

••

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

बाबू

■ सन्त मिश्र

"बाबूजी मुझे लोन मिलेगा?" कहते हुए एक गरीब किसान बैंक के बाबू के सामने खड़ा हो गया.

बाबू चुपचाप फाइलों के पन्ने पलटते रहा.

शायद उसने उस किसान का स्वर सुना ही नहीं था.

पीछे की टेबिल से आवाज उभरी, "अरे रवि, पान-वान की नई हो रही क्या?"

उसने भी उसी अंदाज में उत्तर दिया, "हां-हां-चलो."

दोनों बाबू बतोले करते हुए बाहर निकल गये.

वह किसान दोनों की वापसी का इंतजार करने लगा.

करीब पैंतीस मिनट बाद वे दोनों बाबू लौटे.

बाबू को आते देखकर गरीब की आंखों में रोशनी-सी आयी. वह फिर उसी से गिड़गिड़ाकर बोला, "बाबूजी . . . !"

उस बाबू ने दूर से ही झिड़की लगायी, "अरे अभी कुछ नहीं होगा. लंच टाइम हो रहा है."

किसान और दीन होते हुए बोला, "अच्छा बाबूजी."

उस ऑफिस का लंच चार बजे तक चलता था.

चार बजे तक वह किसान कोने में बेंच पर बैठा-बैठा बैंक के विज्ञापन पोस्टर देखता रहा. ट्रैक्टर चलाता हुआ किसान और लहलहाती फसल वाला पोस्टर उसे भा रहा था.

ऑफिस के सभी लोग धीरे-धीरे ऑफिस आने लगे.

वह बाबू भी अपनी सीट पर आकर बैठ गया और ड्रार में से कोई मैगजीन निकाल वह पन्ने पलटने लगा.

किसान फिर उस बाबू के पास गया, "बाबूजी . . . ."

उसका वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि बाबू बरस पड़ा, "तुम्हें सुबह से देख रहा हूं कि सिर पर सवार हो! हमें अपना काम तक नहीं करने देते." और फिर बाबू ने चपरासी को एक तेज आवाज लगायी "अरे हरिया . . . ."

हरिया उस किसान को ऑफिस से बाहर निकालता रहा, ऑफिस के लोग अपना-अपना काम करते रहे. □

रहने का उसे श्रम पड़ रहा है. वह चुप हो गया, सोचकर कि इच्छा होगी तो वह स्वयं बोलेगी, परंतु कोई आवाज उधर से नहीं उभरी.

नितांत असहायता की स्टेज निकल जाने पर ही वह गेस्ट-हाउस में लौट जाने के बारे में कहने लग गयी थी. शहर में अफवाह-आलोचना का पहला हंगामा झेल चुकने के बाद भास्करन स्थिर हो गया था. जैसे छह दिन वैसे आठ दिन, अतः वह उससे कुछ संभल जाने तक रुके रहने का आग्रह करता रहा.

"नहीं, बेयरर्स तो हैं. . . .दिक्कत नहीं पड़ेगी."

ऐसी ही कुछ दिक्कत बताकर वह गेस्ट-हाउस से आयी थी. भास्करन ने उस ओर संकेत किया तो वह एक ढीठ शरारती हंसी हंसते हुए बोली, "ओह नो, आय नीडेड यू. . यू. . यू. . आय वाज़ श्योर. . . तुम अब ऑफिस जाना शुरू करो, ... जमा हो गया होगा. . ."

"नहीं, फाइलें घर मंगाकर देखता रहा हूं."

"हां, मुझे मालूम है." वह उसे सोता समझकर ही ... करने बैठता था.

"और हां, सिटी लाइब्रेरी से कुछ किताबें ला देना. बहुत ... गया. . . नाऊ आय शुड स्टार्ट लुकिंग आफ्टर मायसेल्फ."

आगे के दिन सहज हो गये थे. पहले की उन्मुक्तता आत्मी... में बदलने लगी थी. कोई अनुपम मिठास, झील की सतह को ... पवन के स्पर्श की तरह मन पर लहराने लगी थी, एक निहा... चौकन्नी चेतावनी के साथ कि उसकी इच्छा के बिना उसके ... कभी भी निर्द्वंद्व नहीं हुआ जा सकता और वह उसे लेकर ... निर्द्वंद्व होती है, यह सिरा भी उसी के हाथ में था. यों शुद्ध घुल... सकने वाली मैत्री उनके बीच इतनी पुरानी बात हो गयी थी ... भास्करन के अब तक के संस्कार, कि ऐसी अंतरंग मैत्री विप... लिंग में हो नहीं सकती —को उछालकर संदर्भ से बाहर ... गयी थी.

अक्सर ऑफिस में उसके कई मसले उलझ जाते थे. कई ... वह चपरासी से फाइलें उठवाकर लंच ऑवर्स में उसके कमरे ... आ धमकती—"लुक! यू हैव टू डू दिस फॉर मी."

ऐसे में दोनों भवों के बीच का हिस्सा सिकुड़कर उसके ... को एक एकाग्र प्रबुद्ध तेजस्विता का आभास दे देता था. उपस्थि... समस्या के सरोकार से उस समय वह पूरी तरह घिरी हुई ... दत्तचित्त, असंपृक्त. अंत तक वह उससे बहस करती, उल... बात पलटती और मानसिक फैसले पर पहुंचने तक अपनी ... पर उतनी ही उग्रता से डटी रहती. वह जिस रूप में, जिस स्त... भी भास्करन को मिलती, एक ही एहसास को बार-बार रेखांकि... करती. . .निर्द्वंद्व, अखंडित, दुविधाविहीन होने का एहसास ... वह जहां भी होती है, पूरी की पूरी होती है.

भास्करन को प्रायः अचंभा भी होता था. शोभा, स... तरु, भाभी, मां, आंटी, चाची. . .जितनी स्त्रियों को उसने ... तक जाना था, उन पर अपनी-अपनी तरह से ध्यान जाता ... वह उसे कहीं रख नहीं सकता था. किसी से उसकी तुलना ... हो सकती थी, किसी को समझकर उसे समझा नहीं सकता ...

ध्यान उधर भी जाता—विमेन लिब. . स्त्री स्वत... वह प्रदर्शन की मानसिकता. . . .वह रुढ़ियां तोड़ने का व... तेवर. . .वह समानता के अधिकार के लिए उठी हुई मुट्ठि... वह पुरुषों के प्रति पिच्च-सी घृणा जो अपने निहत्थे नं... किसी और चीज से अधिक स्त्री में आत्मविश्वास की कमी ... दुर्घटना को ही अधिक प्रकाशित करती थी.

नहीं, वह वहां भी नहीं जुड़ती थी. ऐसा सोचते हुए ... ध्यान अक्सर उसके परिधान पर जाता था, जो ज्यादातर ... होता. उसमें चुनाव की वह तीखी-सावधानी नहीं दीखती ... जो ऊपरी मध्य-वर्ग की आत्म-सजगता की देन है. वह कभी ... गाढ़े रंग के कपड़े पहनते-पहनते एकदम उजले कपड़ों पर ... जाती. पहन लेने के बाद वह उनके बारे में पूरी तरह भूल ... कोई आत्म-सजगता नहीं. पल्ले को बार-बार छेड़ना, खिस... सरकाना, संभालना नहीं. लिपस्टिक कभी गाढ़ी, कभी हल्की ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ी एकदम गायब. तब उसके सफेद चेहरे पर कुछ सांवले से होंठों ...अत्याचार बड़ा असंगत लगता. एक प्रकार के परिधान को पहनते-...ते बिल्कुल दूसरे प्रकार के परिधान पर उतर आने का निर्णायक ...उसका मूड है, रुचि या चुनाव कह सकना कठिन था. अपने ...री रंग-रूप को केंद्र में रखकर कहने-सुनने की छूट न वह ...लेती थी... न ही उस रास्ते अपने तक पहुंचने की कोई राह ...दूसरों को देती थी.

...भास्करन को बंगलौर से कई बुलावे आ चुके थे, वह उन्हें ...पाता रहा, क्योंकि उनमें अभी तक वह दबाव और आग्रह ...था जो अब दिखाई देता था.

उसे पता था वह जायेगा. पत्रों, चित्रों, संबंधियों की एक भीड़ ...झेगा. आई. ए. एस. हो पाने की उसकी निजी योग्यता को ...पुत्र की उपलब्धि की तरह ओढ़कर वह आसपास के समाज ...दो इंच ऊपर होने, बोलने, चुनने का स्व निर्वाचित अधिकार ...को दे देंगे और हर तरह से संपन्न अपने किसी चुनाव पर ...लियां फिराते हुए फैसले के लिए उसका मुंह देखते होने का ...क करेंगे.

और वह क्या करेगा फैसला?... किस आधार पर. फोटो ...कर? एक बार की दावती परेड में शामिल होकर? एक-दो ...के दिये गये एकांत में उससे जबरन मिलकर? या अपनी ...ति के गुणों की तालिका को सर्वोत्तम सर्वसिद्ध मानकर?

उसे स्वयं आश्चर्य हुआ. वर्षों से उसका घर से दूर होस्टलों ...रहते होना... इतनी आत्मनिर्भरता... इतनी परीक्षाएं... ...दमी की दीक्षा.... इतने पड़ावों से गुजर चुकने के बाद भी ...के जीवन के फैसले का सिरा उसके माता-पिता के हाथ में ...है!

शायद इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ी. कुछ है जो ...तक इस एक बात को दो भागों में बांट देता रहा है—प्रेम ...ी और तथा विवाह किसी और तर्क से. जैसे प्रेम होता हो—...ल जाने के लिए और विवाह—उखड़ा हुआ कोई पेंच ...ने के लिए.

एम. ए. के जमाने में वह तरु के लिए एकदम सीरियस था. ...भी संकेत फेंका करती. बुलाने पर आती. पास जाने पर ...ने लगती. छूने पर प्रत्युत्तर देती. मिलने पर खुश होती. ...समय रुआंसी हो जाती, पर शादी उसे होस्टल से घर लौट ...घोड़ी सजाकर, दहेज ले जाकर, रामकृष्ण छाप दूल्हे से ही ...ी थी.

"मेरा दुर्भाग्य . तुम्हें पाना किस्मत में नहीं था." आखिरी ...बेहद रुआंसा-सा मुंह बनाकर जब वह बोली तो उसके दुखते ...मन को बड़े अशुभ तरीके से लगा था कि उसे इस अफेयर ...ऐसा अंत पहले से ही ज्ञात था. वह उसके साथ अपना कॉलेज '...गुड-टाइम' काट रही थी.

पहले घर से आने वाले पत्रों से वह परेशान नहीं होता था. ...वनी पुलक की लहर भीतर कहीं दौड़ जाती थी, पर अब? ...कहीं कुछ ठहर जाता था और प्रश्न की मुद्रा में प्रीति के ...ने जा खड़े होने का शोर भीतर पैदा करने लगता था.

इस बीच उन दोनों ने खासा फासला तय कर लिया था. ...शामें साथ गुजरतीं. सक्सेना और जयरामन् जो इस टोली

लघुकथा

अफसर

◘ सनत् मिश्र

जबसे पुराने बड़े साहब का ट्रांसफर हुआ है और उनकी जगह नये बड़े साहब की पदस्थी हुई है, ऑफिस का माहौल एकदम शांत-सा हो गया है.

नये साहब बहुत ही स्ट्रिक्ट आदमी हैं. जरा भी शोर हुआ कि मेमो ईशू... जरा भी देर हुई कि चार्जशीट...! पर अचानक एक दिन साहब के चेंबर से तीन बार घंटी बजने के बाद भी जब चपरासी उनके पास नहीं गया, तो साहब खुद ही बाहर आ गये.

साहब को देख एकाउंटेंट पूछने लगे, "क्या बात है साब...."

साहब नाराजी के मूड में थे. ...."ये चपरासी का बच्चा कहां चला जाता है, तीन बार घंटियां बजा चुका हूं."

एकाउंटेंट ने जवाब दिया, "पता नहीं साब."

साहब एकाउंटेंट पर झुंझला गये. वे और तेज आवाज में बोलने लगे, "इस आफिस में क्या हो रहा, तुम्हें कुछ भी पता नहीं रहता. कौन बाबू कब आता है,कब जाता है.

इसी बीच एक बाबू ने धीरे से कहा, "शायद पान-सिगरेट लेने गया हो...."

साहब और नाराज हो उठे, "तुम लोग कुछ काम करते-न-धरते, बस चपरासियों से ऊलजलूल काम करवाते रहते हो. जिसने भी उसे पर्सनल वर्क से बाहर भेजा होगा उसे मेमो ईशू करूंगा...और चपरासी की छुट्टी भी!

ऑफिस के सभी लोग एक-दूसरे का चेहरा देख रहे थे. हर कर्मचारी को सामने वाले पर शक हो रहा था.

इसी बीच चपरासी आ गया.

चपरासी को देखते ही साहब चीख पड़े, "कहां गये थे?"

चपरासी ने बेफिक्री से जवाब दिया, "कल बाई साहब ने कहा था. दो बजे आ जाना, आटा पिसाना है, इसीलिए घर पर चला गया था साब."

साहब ढीठाई से हंसते हुए अपने चेंबर में सरक गये. □

के अभिन्न थे, दो पाटों के बीच पड़ने से बच गये गेहूं के दानों की तरह छिटक गये थे. वस्तुतः तो उन लोगों ने तभी हाथ खींच लिया था, जब वह बीमारी में उसके घर रहने गयी थी,"किसी निहित मंशा के बिना ऐसा नहीं हो सकता. आग का साथ है... बस हिम्मत चाहिए थी, जो उस दबंग कलक्टरनी में बहुत है, दूसरों का हौसला तो वहीं जाकर पस्त हो जाता है."

वीक एंड्स पर वह आगरा, आबू, जयपुर आदि भी घूम आये हैं. भास्करन के मन में एक भय था—बिस्तर छूते ही झिड़के जाने का भय. उसे घुलते समय लगा था. कोई पहल न करने का पौरुषीय असंयम उसने बहुत दिन तक बनाये रखा था. अंततः सीमाओं के घुलने ने बहुत समय नहीं लिया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिगरेट अब वह बहुत कम पीती थी. यद्यपि हंसकर कहती, "यह तो अच्छा है कि तुम्हारे अच्छा-बुरा लगने के अधिकार को मेरा अपना मन एक्सेप्ट करता है. . . नहीं तो किसी के कुछ कहने से मैं कुछ करने या छोड़ने वाली नहीं. . . नाऊ, लुक एट माय ममा एंड पापा. . . आय फील टेरीब्ली सॉरी बट. . . ."

उसके ऐसे कथनों पर उसके ब्रिगेडियर पापा की बड़ी दयनीय-सी तस्वीर मन में उभरती थी.

भास्करन उलझा रहने लगा. एक दिन आंख के रास्ते उसके मन की पूरी थाह लेते हुए वह बोली, "क्यों खोटे सिक्के में तबदील होते जा रहे हो तुम?. . . .व्हाट इज वादरिंग यू ?"

भास्करन ने फाइलों के नीचे दबा तार खींचकर उसके हाथ में थमा दिया, फिर पेपरवेट को घुमाते हुए बोला, "कब तक टालता रहूंगा. . . महीनों से ऐसे पत्र आ रहे हैं. . . जाना तो पड़ेगा. मालूम है, बंगलौर क्यों बुलाया जा रहा है ?"

"मालूम है." वह थोड़ी संजीदगी से बोली.

चाहता वह था कि अब वही बोले. जिस बात को वह अभी तक स्थगित करती आयी है, उसका जिम्मा ले ले. सामने उपस्थित हुए दबाव को निजी समझकर झेले, उत्तर दे, अधिकार जताये, पर वह कुछ भी न बोली. सामने पड़े कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियां बनाती रही.

वह कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बोला, "यह ज्यादा आसान है. . . मैं उन्हें यहीं से तुम्हारे बारे में लिख दूं ?"

"क्यों ? मेरे बारे में क्यों. . . मैं तुम्हें कह नहीं चुकी कई बार. . . क्या मेरी तरफ से यह बात साफ नहीं है. . . .शादी ? ओह नो!. . . .नो मैरिज. . . . नैवर. . . .मेरा ऐसा कोई सपना नहीं है."

"इच्छित व्यक्ति सामने हो तो फर्क नहीं पड़ता ?"

"पड़ सकता है, पर मुझे नहीं पड़ेगा. मैं अपने को अच्छी तरह जानती हूं. 'पत्नी'. . . जिसे तुम सब 'पत्नी' कहते हो, वह मैं नहीं हो सकती. . .कभी भी नहीं. मेरे अंदर दूसरों को उस हद तक एडजस्ट करने का माद्दा नहीं है. मेरी आदतें? . . . .ओह गाड!. . . .मेरे साथ यह नहीं निभ सकता. . . खाने का सवाल सबसे बाद में. बाथरूम का इस्तेमाल सबसे बाद में. नींद की छुट्टी सबसे पीछे. . . आय टेल यू. . . दे आर ग्रेट. . .दीज वाइव्ज. . . नो हाउ टू किल देम सेलव्स फॉर अदर्स. रियल मारटर्स."

"घर का बड़ा घिसा-पिटा नक्शा खींच रही हो तुम. . . घर तो वही होगा, जो उसमें रहने वाले लोग बनायेंगे. . . उनके जो संबंध होंगे. . . संबंध घर से बाहर हो सकते हैं तो घर में क्यों नहीं. . . ?"

"नहीं ! नहीं हो सकते. . . घर में होते ही स्टैंड बदल जाते हैं. . . . घर में अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जी सकने, घुल सकने का आर्ट चाहिए. एसीमिलेशन इज ए वैल्यू देयर. . . और मैं ? . . .मैं जानती हूं, मैं अपने को नहीं भूल सकती. . . . आयम सो वेरी पॉजिटिव अबाउट माय नीड्स."

उसके आगे कुछ भी कहना भास्करन को मांगते होने की दयनीयता से लथपथ लगा और दयनीय उसके सामने नहीं हुआ जा सकता था. वह चुप बैठा रहा.

वह भी अछूती रही हो, ऐसा नहीं था. लाल दहकते हुए अंगारे के मुख को क्षणांश में ही जैसे एक बुझी हुई परत घेर ले, वैसा ही हो आया उसका मुख. . . एकदम अवर्ण.

आघात भास्करन को यह भी लगा था—अभी तक आ... के जिस कोने में वह बादलों का जमघट देख रहा था, वह ... होकर किसी दूसरी जगह पर था. उसे अब तक अपने ... एक बड़ा युद्ध स्थल दीखता था. . . उसके माता-पिता ... पुत्रवधू को आसानी से नहीं स्वीकारेंगे. पुत्रवधू का प्रत्यय ... साथ कहीं नहीं जुड़ा था, पर इस समय मां-बाप, संस्कार, सम... कता, जातिभेद, प्रांत—सबका एक ही नाम था. सामने ... में वह ही थी, अपने जीवन-दर्शन की चौंध में खड़ी, अकेली, ... हुई.

बात जीवन-दर्शन पर ही आकर अटक जाये तो ... जीवन-दर्शन की ओर देखने की सजगता भी मन में कहीं ... उठती है.

◘

रात पहली बार उसने क्लब में प्रीति के चेहरे पर ऐसा ... आवरण देखा. . . .आच्छन्न संजीदा चेहरा. ताश खेलने में ... कोई उत्साह नहीं दिखाया. क्लब की पिछली दीवार जिस ... पर थी, उसके नीचे नदी बहती थी. अक्सर वह लोग ... टहलते उधर निकल जाया करते थे.

उसने भास्करन को उधर चलने का सुझाव दिया. रात ... ही नहीं, एक-दो घंटे पहले पानी पड़ चुकने के बाद गीली, ... उमस से भरी हुई भी थी. इस सुझाव को मानने की कोई ... भास्करन को नहीं हुई. लगा, उधर जाना उदासी बढ़ायेगा. क्लब के अंदर जाने की इच्छा भी उसने नहीं जतायी.

"कोई बीच का रास्ता भी तो हो सकता है?" ... दालान से थोड़ा आगे बढ़कर उसने बाहर झांका.

"कम ऑन," भास्करन ने उसका हाथ लगभग खींच... कहा. उसकी बांह जितनी भी ठंडी हो, हथेली वैसी ही थी— उष्ण.

उस हथेली को इस समय महसूसते हुए एक छोटा-सा ... भीतर कहीं उसकी छाती में गड़ने लगा.

बेंत की कुर्सियां खींचकर वे लॉन में बैठ गये. उस ... धुंधले प्रकाश में जहां चेहरा भी साफ नहीं देखा जा सकता, वे दोनों बैठे थे—जड़, अवाक्.

अंदर कोई तेज-सी धुन बजने लगी. वह उठी तो ... को लगा, वह नाचने के इरादे से उठी है, पर वह खड़ी होकर कुर्सी को परे घसीट रही थी. उस आवाज की पहुंच से बाहर वह सड़क और क्लब के बीच खड़ी मेंहदी की मेड़ के पास आये थे.

कौन पहले बोले?. . . .क्या ऐसी कोई प्रतीक्षा बीच ... . . . .संवाद अपने-अपने मन में चल रहा था, शायद दोनों ...

भास्करन ने पहली बार उसे देखा था—इतना मौन, ... कारण की खोज में पीछे दौड़ते-दौड़ते उसके मन को ... की तरह उकसा देती थी कोई आशा. यह एहसास कि ... उसको खो देने के अवसाद से भरी है,. . .उसको भी ... रहा है, यह सब कुछ उतना ही. . . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आर यू....आर यू....श्योर प्रीति." भास्करन ने हिम्मत कर डाली थी.

"ओह भाश!" वह बहुत पीड़ित स्वर में बोली, "कह चुकी हूं न कि आय शैल बी ए फेलयोर इन मैरिज...मुझे अपनी जरूरतों का पता है पूरी तरह....और घर में अपनों नहीं, दूसरों की जरूरतों का पता होना चाहिए....मैं जानती हूं, इतने त्याग मैं नहीं कर सकती."

"घर में बहुत-सी बातें एक-दूसरे का प्यार-अधिकार मान कर भी तो की जाती हैं. ऐसा क्यों न सोचो, जैसे मैंने तुम्हारे सिगरेट पीने का कभी एतराज तो नहीं किया, पर तुम, स्वयं ही..."

"बस! बस, यही....यही सबसे ज्यादा मारने वाली बात है. किसी से चाहा जाना कि वह खुद ही, सोचकर, समझकर, सामने वाले की इच्छा को ध्यान में रखकर बदल जाये, इससे बड़ी और क्रूर अपेक्षा और क्या हो सकती है!" उसकी आवाज में थोड़ी तल्खी आ गयी थी.

■

भास्करन अवाक् रह गया, जैसे अब यह अंतिम उत्तर हो अपने तर्क में पूर्ण. इससे आगे कुछ नहीं कहा जा सकता, कुछ नहीं हो सकता. जाने कैसी अबूझ-सी घबराहट उसके भीतर उठी, उसे छिड़कता हुआ बोला, "छोड़ो, वहां जाऊंगा तो देखा जायेगा..."

वह बड़ी विचित्र-सी हंसी हंसी. "नीट एस्केप!....खैर... इतना हक तो तुम्हारा अपनी जिंदगी पर बनता है कि फैसला करने में जितना चाहो, वक्त लो....नाउ कम ऑन."

डांस के लिए यह आमंत्रण उसकी तरफ से आया न होता तो वह शायद न उठता.

भास्करन से रहा नहीं गया तो उठते-उठते पूछ बैठा, "क्या कभी मां या पत्नी बनने की आकांक्षा नहीं उठती मन में?"

"अपने जैसे व्यक्ति में उस इच्छा का होना मुझे खुद इररैशनल लगता है....आय नो आयम नॉट एटयून्ड टु इट....हवा में तीर मारने का फायदा. हां....बच्चों से मुझे बहुत प्यार है... जहां कहीं भी हों, जिस किसी के भी हों....दे गिव मी कंपलीट रिलीज."

उसे याद आया, उसका घंटों बच्चों में खेलते होना अपने को भूलकर ....इस बाहरी दुनिया से बेगाना होकर.....

वह शायद उसी रौ में थी. सोचते हुए बोली, "कितना कुछ है हमारे आसपास जिसे हम प्यार करते हैं...वह सब कुछ हमें बिलांग ही करे या करता हो....क्या जरूरी है?"

वह दोनों हाल में घुस गये और नाचने लगे. धुन उनके मन की गति से अधिक तेज थी. व्यर्थ थके, दोनों को एक-सी अनुभूति हुई.

भास्करन चाहता तो हवाई जहाज से बंगलौर जा सकता था, परंतु उसने रेलगाड़ी से जाना ही चुना. अपने वहां पहुंचने के अंतराल को वह अधिक से अधिक लंबा खींचना चाहता था.

'इतना असहायता और अवसाद क्यों', उसने सुबह शेव करते अपने को समझाया. 'और कुछ नहीं तो वह इस फैसले को फिलहाल स्थगित तो कर ही सकता है...'

कुछ धीरज-सा उसके मन को हुआ और इस धीरज को उसने ढेले से प्रीति की तरफ सरका देना चाहा.

"नाउ डोंट टेल मी दैट..." वह भड़क उठी, "मेरे कारण किसी भी फैसले को स्थगित करके तुम अपने-आप को ही तोड़ोगे ....मेरे मन में कुछ नहीं बदलने वाला. अधकचरे फैसले करके जिंदगी को यातना बना देने का मेरा कोई इरादा नहीं. आय टेक लाइफ ऐज समथिंग प्रेशियस....वर्थ प्रिजरविंग."

भास्करन को अपने पर क्रोध आया. जाने के समय की सघनता को उसने स्वयं ही खंडित कर दिया था. वह उखड़ गयी थी. खीझ को ढांपने के प्रयास में उसका चेहरा तमतमा गया था.

बिना बोले वह प्लेटफार्म पर कुछ दूर टहल गयी. थोड़ी देर बाद स्टाल से एकाध पत्रिका खरीदकर वापस लौटी और उसका हाथ, हाथ में लेते हुए बोली, "सॉरी....तुम्हारा मन दुखाने की मंशा नहीं थी. तुम्हारी दिक्कत समझती हूं....पर साफ कह देना मैं भी जरूरी समझती थी—टू हेल्प यू टू थिंक क्लियरली..."

उसका ऐसा पिघला हुआ, स्नेह-सहानुभूति से दीप्त चेहरा देखकर भास्करन और कातर हो आया.

बिखर पड़ने की जमीन उसे मिले, इससे पहले ही वह बोली, "चलूं?....आय विश, यू डू बट रियली बिलीव इन...गुडबाय ....गुडलक!" कहती हुई वह वापस चलती चली गयी. पीठ का परायापन उसे खूब खला. परंतु ट्रेन के चलने तक उसे रोक पाता, यह साहस भास्करन में नहीं था. यह वह नहीं थी जो मोम की काया की तरह उसकी बांहों में पिघल जाती थी और उस तरलता में से हर बार आश्वासन और विश्वास के साथ नया जन्म लेती थी.

भास्करन 15 दिनों की छुट्टी लेकर गया था. जाकर एक महीने की और बढ़ा ली. जब वापस आया तो पत्नी को लेकर आया.

वहां पहुंचने के बाद उसने दो-तीन पत्र प्रीति को लिखे थे, "मां-बाप बजिद हैं....यहां लगभग सब कुछ तय है....बड़ी अजीब-सी अनुभूति हो रही है....तुम्हारे साथ होने की चुनौती कुछ और ही अर्थ रखती. यू आर ग्रेट." आदि-आदि.

उसने उसी क्षण पत्रों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और अपने जिले के टूर पर निकल गयी थी. उन प्रदेशों के अंधेरे डाक बंगलों में उसने जमकर डायरी लिखी....जी भर सोयी....कई पेंटिंग्स बनायी....तहसीलों के छोटे-छोटे बाजारों में घूमती फिरी.

■

लौटने पर भास्करन की शादी का रिसेप्शन उसी क्लब में हुआ. माली से कहकर उसने एक बड़ा और खूबसूरत बुके बनवाया और उसे उस शाम दंपती को भेंट करने के बाद वह उनकी ओर से पूरी तरह निर्लिप्त हो गयी. पिछले दिनों जो बादल उसके चेहरे पर दीखते थे, वह गायब हो गये थे....उसे वापस मिल गया था, वही अपना मौलिक, तनावहीन, मुक्त, निर्दोष चेहरा.

पार्टी की शाम हर समूह में वह एक प्रच्छन्न से तनाव से स्वीकृत हुई. इस थोपी गयी दया, करुणा से उसका मन इतना क्षुब्ध हुआ कि वह जी भर नाची और थक जाने पर भास्करन दंपती को इच्छित भविष्य की कामना करते हुए जीप लेकर चल निकली..

फोन भास्करन ने ऑफिस से लंच आवर्स में किया था, "वुड यू केयर फॉर ए कप आफ टी?" उसे लौटे दस-बारह दिन तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

वर्षा यज्ञ

कस्बे के लोग यज्ञ मंडप में इकट्ठे हो गये थे. लोगों ने बारह हजार रुपये एकत्रित करके यज्ञ का आयोजन किया था. उन्हें विश्वास था कि यज्ञ करने से वर्षा अवश्य होगी. इस मौसम में एक बार भी वर्षा नहीं हुई थी.

पुरोहित ने मंत्रोच्चारण करते हुए कहा, "हे इंद्र देवता आप प्रसन्न हों. इस प्रदेश में व्याप्त सूखे से त्रस्त जन पर कृपा करो. अन्न ही प्राण है और वर्षा से ही अन्न की प्राप्ति होती है."

एक व्यापारी ने उठकर प्रार्थना की, "प्रभो, अन्न ही धन है. हमारी दूकानों पर फसल नहीं आयेगी तो हमारा व्यापार नष्ट हो जायेगा. हमें वर्षा की सख्त जरूरत है."

समीप के गांवों में आये कुछ किसान भी वहां उपस्थित थे. उनमें से एक ने कहा, "हमारा तो जीवन ही वर्षा पर निर्भर है. यदि पानी न बरसा तो हम क्या खायेंगे. हमारी फसलें सूख रही हैं. हम पर दया कर परभू." उसने अपने हाथ आकाश की ओर उठाये और उदास मन से बैठ गया.

वहीं बैठ एक कवि ने कहा, "हे देवाधिपति, मैं काली-घटा को देखने के लिए तरस गया हूं. मुझे मोर की मधुर आवाज और पपीहे का आकुल स्वर सुनाई नहीं देता. मेरी कविता के प्रेरणा स्रोत लुप्त हो गये हैं!"

तभी भीड़ में से एक युवक उठा. उसके कपड़े फटे-पुराने थे. लगता था, वह कोई मजदूर था. लोगों ने उसकी ओर देखा और एक दूसरे से बतियाये हुए कहने लगे, "ईश्वर गरीब की पुकार सुनता है. दीनबंधु इस मजदूर की बिनती को अवश्य सुनेंगे.

लोगों की नजरें उस मजदूर पर टिक गयीं. उसके होंठ हिल रहे थे, परंतु आवाज नहीं आ रही थी. भीड़ में से कुछ ने कहा, "बोलो भाई, बोलते क्यों नहीं."

मजदूर अपनी बात कहने के लिए साहस बटोर रहा था. परंतु शब्द थे कि उसकी जबान से निकलते ही नहीं थे. जैसे नींद में डूबा हुआ व्यक्ति लाख चाहने पर भी अपना कोई अंग हिला नहीं सकता या बोल नहीं सकता.

आखिर लोगों ने सुना, मजदूर कह रहा था, "यदि वर्षा हुई तो मेरे कच्चे मकान की छत गिर पड़ेगी और मेरे बीवी-बच्चे और बूढ़ी मां उसके नीचे दब जायेंगे. मैंने कितना यत्न किया कि छत बदलवा दूं, परंतु मैं उसकी मरम्मत के लिए भी पैसे नहीं जुटा पाया. मुझे वर्षा के नाम से ही डर लगता है. मैं नहीं चाहता कि वर्षा हो, मैं नहीं चाहता."

वह अपनी बात पूरी न कर सका. लोगों ने ऊंची आवाज में कहा, "निकालो इस स्वार्थी को. कमीना कहीं का."

यज्ञ चलता रहा. बारिश नहीं हुई. □

■ पूरन मुद्गल

जरूर हो गये होंगे.

"तुम्हें ठीक लगेगा?" उसके प्रश्न में न व्यंग्य था न आवेग.

"मैं ही तो बुला रहा हूं."

भास्करन मिला उसे—पूरी तरह हिला हुआ, अस्थिर, अशांत. चाय का कप सामने रखकर आंखें नीची किये अपनी हथेली की रेखाओं को पोंछता-मिटाता.

यह असहजता प्रीति ने लक्ष्य की. तोड़ने की गरज से बोली, "कैसा लग रहा है?....एंजायिंग?"

भास्करन ने एक दयनीय-सी दृष्टि ऊपर उठायी.

"क्या हो गया है तुम्हें...? जिस बात में विश्वास करते हो तुम, जिस 'वे आफ लाइफ' में वह चुन लिया है तुमने..अब? ....यह बात अलग है कि तुम्हें लग रहा हो वह कुछ तुमने अपने विश्वास की वजह से उतना नहीं, जितना एक चलती आयी आदत या उससे बन गये संस्कार से.....या हो सकता है डिफर न कर सकने की मजबूरी में किया हो. एक बात कहूं, हम सब इस शहादत के आदी हो गये हैं—सपनों की शहादत, इच्छाओं की शहादत.....इवन व्हेन दे डू नाट कन्सर्न आर हर्ट अदर्स....जो कुछ भी पाना चाहते हैं, उसके बारे में हाफ हार्टेड होते हैं. मन में कहीं न कहीं सोचते रहते हैं कि उसका फैसला किसी न किसी आदत, संस्कार या समाज के हवाले है....कभी सोचा है तुमने कि किसी चीज को पाने की जो जेनुइन अर्नेस्ट कोशिश होती है, उसके कितना आड़े आती है यह बात. अल्टीमेटली हाथ में उतना ही आता है जितना वन हैज वर्कड फॉर.....या कह लो उतना ही डिजर्व किया था."

"........"

"मैं चाहती तो चल देती तुम्हारे साथ....तुम चाहते तो रुके रहते यहीं. नहीं कह सकती थी मैं तुम्हें, यहीं, अपनी वजह से रुके रहने को. यह कहना भी एक आदेश, एक बंधन देना ही होता. मैं जब स्वयं उसे नहीं मानती तो दूसरे को...."

■

भास्करन कुछ भी नहीं सुन रहा है. वह कहीं और किसी दूसरे छोर पर कांपता खड़ा है, इस सारी मानसिक उत्तेजना से एकदम अछूता, प्रीति ने एकाएक लक्ष्य किया.

"ऑलदो ऐम्बेरेसिंग...." वह एकाएक मुंह उठाकर बोला, "एक बात पूछूं?..अभी भी तुम्हारे लिए मेरे मन में बनी होने वाली चाह को तुम कैसे लोगी?....आय मीन कैसे....कैसे इंटरप्रेट करोगी?"

"जैसे की जाती है." वह एकदम हंस पड़ी, "नेचुरल!... पुरुषोचित!" शिद्दत का कोई क्षण होता है, तो वह अपने आपको स्वयं मनवा लेता है....तुम अपनी तरह से कह सकते हो कि उसकी कोई गवर्निंग मोरेल्टी नहीं होती....यह तो तुम्हारे सवाल का जवाब हुआ. जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं परायी चीजों को हाथ नहीं लगाती....आय अर्न फॉर मायसेल्फ—माय पीस एंड हैपीनेस और वह किसी एक बात में ही तो नहीं मिलती..इट कम्स टू यू इन थाउजैंड अनलिमिटेड वेज..जिंदगी मेरे लिए किसी एक ही बिंदु पर खत्म नहीं हो जाती...." □

● 1/12, सर्वप्रिय विहार, नयी दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारियो पूज़ो अपने घर का निकम्मा लड़का था. तिस पर तुर्रा यह कि उसने लेखक बनने की ठान ली. हमारे समाज में भी आम राय यही है कि लेखक फाके काटते हैं. परंतु मारियो पूज़ो के साथ ऐसा होकर भी नहीं हुआ. उसने एक उपन्यास लिखा––'गॉडफादर' जो इतना लोकप्रिय हुआ कि पूज़ो के वारे-न्यारे हो गये और वह दुनिया का सबसे अमीर लेखक बन गया. यह उपन्यास उसने कैसे, किन हालात में क्योंकर लिखा, यह जानना अपने-आप में बेहद दिलचस्प हो सकता है. यहां प्रस्तुत है पूज़ो की अपनी और समाज की तत्कालीन मानसिकता के संदर्भ में 'गॉडफादर' की कथायात्रा, जो बहुत-सी साहित्यिक गुंजलों को भी रेखांकित करती है––

पूज़ो ने 'गॉडफादर' क्यों लिखा ?

▣ द्रोणवीर कोहली

इतालवी भाषा में एक लाक्षणिक शब्द है—'चूच', जिसका संस्कृत पर्याय 'खर' हो सकता है. परंतु इससे भी अधिक सटीक शब्द संभवतः पंजाबी में है—खोता. 'चूच' से प्रायः एक ऐसे व्यक्ति का बोध होता है, जो जड़मति, सुस्त, ढीला-ढाला एवं निकम्मा है. इटली में ऐसी किवदंती है कि प्रत्येक इतालवी परिवार में एक-न-एक 'चूच' अवश्य होता है, जो कभी खा-कमा नहीं सकता. परिवार के अन्य सदस्य कभी उसकी अवहेलना-अवमानना नहीं करते, बल्कि हर प्रकार से 'चूच' की सहायता ही करते हैं.

नदी न घटयो नीर!

आपको यह जानकर अचरज होगा कि आज 'द गॉडफादर' तथा 'फूल्स डाइ' उपन्यासों के बल पर करोड़ों डालर कमाने वाला मारियो पूज़ो, किसी समय 'चूच' ही समझा जाता था. उपर्युक्त दो उपन्यासों की सफलता से पूर्व उसके दो-दो साहित्यक उपन्यास छपकर चर्चित हो चुके थे, अनेक पत्र-पत्रिकाओं के लिए वह तोलकर लिखता भी था, परंतु कभी इतना रुपया नहीं कमा पाया कि सही तरीके से अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकता. हमेशा कर्ज में आकंठ डूबा रहता. जब कर्ज वाले अधिक तंग करते या बच्चे जूते खरीदवाने के लिए इसरार करते, तो पूज़ो अपने भाई का द्वार खटखटाता. और भाई भी ऐसा कि हमेशा अपने 'चूच' की सहायता को तत्पर.

परंतु मारियो पूज़ो लेखक था और लेखक में स्वाभिमान न हो, तो फिर वह लेखक कैसा! एक दिन अचानक वह बीमार पड़ा और टैक्सी लेकर अस्पताल पहुंचा, पर उतरते-उतरते नाली में गिर पड़ा. उस दिन की अपनी अधोगति का स्मरण करके पूज़ो ने एक जगह लिखा है:

"नाली में गिरा मैं सोच रहा था कि मैं एक लेखक, जिसकी कई चीजें छप चुकी हैं; और हालत यह है कि मैं यहां कुत्ते की नाई मर रहा हूं. बस, तत्काल मैंने निश्चय किया कि अब मैं भी पैसा कमाऊंगा, प्रसिद्धि पाऊंगा. . . . .!"

खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तदबीर से पहले, खुदा बंदे से यह पूछे बता तेरी रज़ा क्या है! सचमुच, यही हुआ. मारियो पूज़ो के इसी संकल्प का फल है कि आज वह लेखकों में सबसे बड़ा धनकुबेर बन गया है. 'गॉडफादर' उपन्यास तथा इस पर बनी फिल्म की बदौलत उसने इतना रुपया कमाया है कि वह प्रतिदिन जुआघरों में हजारों दांव पर लगाता है और हारता भी है, फिर भी हालत यह है कि. . .चिड़ी चोंच भर ले गयी, नदी न घटयो नीर. . .

जहन्नुम की रसोई

आखिर, मारियो पूज़ो के 'गॉडफादर' उपन्यास में ऐसा है क्या, जिसने न केवल फाकामस्त लेखक के जीवन की दिशा ही बदल दी है, बल्कि प्रकाशकों एवं फिल्म-निर्माताओं की भी चांदी हो गयी है. इसके लिए मारियो पूज़ो के जीवनवृत पर विहंगम दृष्टि डालना समीचीन होगा, क्योंकि इस उपन्यास में वर्णित कथा तथा उसकी रचनात्मक पृष्ठभूमि को समझने के लिए लेखक के कष्टपूर्ण जीवन का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है, क्योंकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं.

मारियो पूज़ो इतालवी मूल का अमेरिकी नागरिक है. कभी उसकी दीन-हीन मां जवानी के दिनों में इटली में दक्षिणी सिसिली के एक छोटे-से गांव से भागकर अमेरिका चली आयी थी—एक अज्ञात इतालवी पुरुष से विवाह करने, ताकि दो जून रोटी उसे नसीब हो सके. पति चार बच्चे देकर इस दुनिया से किनारा कर गया. तब परिवार का भरण-पोषण करने के लिए इस स्त्री ने पुनर्विवाह किया, पर दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा. तीन और बच्चे देकर (इनमें एक मारियो पूज़ो भी था) दूसरा पति भी चुपचाप इस दुनिया से कूच कर गया. पिता की मृत्यु के समय पूज़ो की उम्र कुल बारह बरस की थी. ये लोग न्यूयार्क की एक अत्यंत गंदी बस्ती में रहते थे. 'गॉडफादर–दो' फिल्म में कप्पोला ने न्यूयार्क की उस गंदी बस्ती का अत्यंत जीवंत दृश्य प्रस्तुत किया है. **अचरज होता है कि दिल्ली के वर्तमान पहाड़गंज में छहट्टी जैसे बाजार और न्यूयार्क की तत्कालीन गंदी बस्ती में कितना सादृश्य है!**

न्यूयार्क की उस बस्ती का नाम भी प्रतीकात्मक था—'हैल्स किचन'. . . यानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहन्नुम की रसोई. इसी गंदे माहौल में पूज़ो की बाल्य एवं किशोर अवस्था बीती. इस इलाके में रहने वाले इतालवी लोगों का जीवन कितना नारकीय था, इसका विशद वर्णन पूज़ो ने अपनी एक प्रारंभिक कहानी में किया है.

सोलहवें साल का संकल्प

सारी बस्ती में गुंडों और निठल्लों का आतंक रहता था. मर्द दो जून रोटी कमाने के लिए 'रेलरोड' में मेहनत-मशक्कत करते, बच्चे गाड़ियों से कोयला और बर्फ चुराते फिरते, किशोर-किशोरियां सिल्क की ढुलाई करने वाली मोटर गाड़ियां उड़ाकर अपराधी जीवन का अभ्यास करते रहते. ऐसे कुत्सित वातावरण में पूज़ो जैसा संवेदनशील बालक सपने देख रहा था. . .कभी सोचता कि फिल्मी 'काउबाय' यानी घोसी बनकर वह भी बहादुरी के कारनामे दिखाये. फिर सोचता कि कभी विश्वयुद्ध छिड़े, तो उसमें भर्ती होकर अपने जौहर दिखाये. कभी सोचता कि बड़ा कलाकार बने या यह भी संभव न हो, तो 'क्रिमिनल' ही बन जाये. सोलहवें में कदम रखते-रखते उसने निश्चय किया कि वह एक बड़ा लेखक बनेगा, जबकि उसकी मां की अभिलाषा थी कि पूज़ो अपने स्वर्गवासी पिता की तरह रेलरोड में नौकरी करे. पूज़ो ने उन दिनों की अपनी सोच और मानसिकता का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि आखिर उन दिनों उसके मन में लेखक बनने की उमंग क्यों उठती थी. उसने यह निष्कर्ष निकाला कि **लेखक वास्तविक संसार और वास्तविक लोगों की यंत्रणाओं और अवमाननाओं से बचने के लिए ही लेखक बनते हैं!**

ऊंट के मुंह में जीरा

बहरहाल, स्कूल से लौटकर पूज़ो तीन बजे के बाद रेलरोड में हरकारे का काम करने लगा. वास्तव में पूज़ो प्रौढ़ जीवन में कदम रखने से कतराता था. आसपास की कठोर जिंदगी उसने काफी देख ली थी. शादी-ब्याह और बच्चे पैदा करके वह उसी समाज का अंग नहीं बनना चहता था जिसमें बच्चे 'क्रिमिनल' बनने का रियाज कर रहे हों. अक्सर वह किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में जा बैठता और घंटों किताबों में खोया रहता. पंद्रह-सोलह बरस की उम्र में ही उसने दोस्तोयेव्स्की के उपन्यास पढ़ डाले. पर भीतर ही भीतर वह त्रस्त था कि कहीं कोई ऐसी दुर्घटना न हो जाये कि क्रिमिनल बनने की उसकी अभिलाषा नंबर दो ही पूरी हो. परंतु दोस्तोयेव्स्की को पढ़कर से उसने जीवन को खुली आंखों से देखने का मंत्र सीखा.

पहली कहानी उसने सत्रह बरस की उम्र में लिखी. तभी विश्वयुद्ध छिड़ गया. पूज़ो भरती होकर सारा योरोप देख आया. इसी दौरान उसका परिचय एक जर्मन लड़की से हुआ, जिसके साथ बाद में उसने विवाह कर लिया. योरोप-भ्रमण से पूज़ो को अपने पहले उपन्यास की सामग्री मिली. यह उपन्यास 1955 में 'द डार्क एरीना' नाम से छपा. तब पूज़ो की उम्र अट्ठाइसेक बरस की हो चुकी थी. आलोचकों ने उसके प्रथम उपन्यास का अच्छा स्वागत किया. परंतु पूज़ो को पारिश्रमिक के रूप में मिले कुल 3,500 डालर. एक भारतीय लेखक की दृष्टि में यह रकम भारी हो सकती है—लगभग 30,000 रुपये—पर अमेरिकी लेखक के लिए तो ऊंट के मुंह में जीरा. तिस पर भी पूज़ो ने संघर्ष और साधना से मुख नहीं मोड़ा.

लंबे अंतराल के बाद उसने एक और उपन्यास लिखा, जो 1965 में 'द फार-चुनेट पिलग्रिम' नाम से छपा. इसमें पूज़ो के बचपन का बहुत बड़ा अंश विद्यमान है. इस उपन्यास की भी काफी सराहना हुई, यहां तक कि एक पत्रिका ने उसे एक 'छोटा क्लासिक' की ही संज्ञा दे डाली.

कर्ज लीजिए, घी पीजिए

परंतु प्रशंसा-प्रशस्ति से पूज़ो का पेट नहीं भर सकता था. पारिश्रमिक के नाम पर उसे पहले उपन्यास से भी कम राशि मिली—कुल 3, 000 डालर. पूज़ो कर्ज के बोझ तले बुरी तरह छटपटा रहा था. दूसरे उपन्यास की अनुकूल आलोचना से उत्साहित होकर उसने तीसरा उपन्यास लिखने का निश्चय किया. काफी सामग्री भी जुटा ली. जेब में फूटी कौड़ी नहीं थी. प्रकाशकों से उसने पेशगी रकम मांगने की 'धृष्टता' की, पर प्रकाशक खैरात बांटने के लिए दूकान थोड़े खोलते हैं! तत्काल उन्होंने पूज़ो का दरवाजा दिखाया. पूज़ो ने पेशगी रकम मांगने का दुस्साहस इस भ्रम के कारण किया था कि वह एक प्रभावशाली एवं प्रतिष्ठित उपन्यासकार है. यह उन दिनों की बात है जब पूज़ो की उम्र 45 बरस की हो चुकी थी. वह स्वयं को क्लांतश्रांत महसूस करने लगा था. ऊपर से पैसे की मार! करीब बीस हजार डालर का कर्ज उसके सिर पर था. फिर इतने बड़े परिवार के भरण-पोषण का दायित्व. उसकी दुर्दशा का एक कारण संभवतः यह भी था कि वह हमेशा 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत' पर आचरण करता आया था. परंतु इसी मोड़ पर आकर जैसे लक्ष्मी ने उसके सिर पर अपना वरदहस्त रख दिया.

किस्सा-ए गॉडफादर

एक दिन पूज़ो के प्रकाशकों के एक संपादक ने योंही जिक्र किया कि यदि पूज़ो के दूसरे उपन्यास 'द फारचुनेट' में 'माफिया' के बारे में थोड़ी अधिक सामग्री रहती तो इस उपन्यास की अच्छी बिक्री हो सकती थी. पूजो के सामने और कोई विकल्प नहीं था. वह रुपया कमाने के लिए अब कुछ भी करने को तैयार था. तत्काल उसने निश्चय किया कि वह 'माफिया' पर उपन्यास लिखकर देगा. पेशगी रकम मिलने का प्रश्न ही नहीं था. हां, प्रकाशकों ने यह जरूर कहा कि यदि वह सौ पृष्ठ लिखकर दिखाये, तो आगे के लिए पेशगी रकम प्रदान की जा सकती है. पूज़ो ने अपने प्रस्तावित उपन्यास 'द गॉडफादर' पर काम शुरू कर दिया और मात्र दस पन्नों का सार-संक्षेप लेकर प्रकाशकों के पास पहुंचा. प्रकाशकों ने एक नजर देखकर ही उसे अस्वीकृत कर दिया.

पूजो का दिमाग झनझना उठा. इतनी अवमानना, इतनी निर्ममता! इस दुखद घटना का वर्णन करते हुए पूज़ो ने लिखा है—**इस बात का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि प्रकाशकों के इन हथकंडों से लेखक का कितना तिरस्कार होता है, कितनी अवमानना होती है, उसमें किस तरह विषाद और ग्लानि उत्पन्न होती है, किस तरह उसकी इच्छा-शक्ति का ह्रास होता है. मैं समझ बैठा था, उसने अत्यंत विषाद-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण लहजे में लिखा है — कि प्रकाशकों को कला से कोई सरोकार था. उनका कोई सरोकार नहीं था कला-वला से. वे रुपया कमाना चाहते थे. यह उनका धंधा था. उन्होंने पूंजी लगा रखी थी और कर्मचारियों को पगार भी देनी होती थी. यदि कोई बावला किसी कलाकृति की सर्जना करना चाहता है, तो क्यों नहीं वह अपने घर बैठकर ऐसा करता!

पैसे की जरूरत का कमाल !

परंतु पूज़ो को भी पैसा चाहिए था. उसे लगने लगा था कि यदि उसकी अगली किताब सफल नहीं होती, तो जीवन में वह फिर कभी कलम नहीं पकड़ सकेगा. मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक दवाव उसकी कमर ही तोड़कर रख देंगे.

उसे विश्वास था कि यदि एक बार वह तय ही कर लेता है कि उसे 'बेस्टसेलर' लिखना है, यानी ऐसी किताब, जिसकी लाखों प्रतियां धड़ाधड़ बिक जायें, तो कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती. इस पर उसके मित्र, लेखक, परिवार के लोग तथा कर्ज देने वाले भी उस पर जोर डालने लगे कि भलेमानस अगर इतनी क्षमता तेरे में है, तो फिर इंतजार किस बात की? लिख डाल ऐसा बेस्टसेलर . . . . !

पूज़ो ने आश्चर्यजनक संकल्प-शक्ति का परिचय दिया. पूज़ो ने साहित्य-साधना और साहित्य-सेवा जैसी बेमानी और भावुकता-पूर्ण ग्रंथियों से स्वयं को मुक्त किया और सामग्री जुटाने में लग गया.

दस पन्नों का मसौदा उसके पास पहले से ही तैयार था. संयोग से ये दस पन्ने एक अन्य प्रकाशक तक पहुंचे. उसे इसमें अपार संभावनाएं दिखायी दीं.

उसने पूज़ो को बुला भेजा. एक घंटे की बातचीत में सौदा पट गया. प्रकाशक ने पूज़ो को 'माफिया' पर उपन्यास लिखने के लिए पांच हजार डालर पेशगी रकम देना स्वीकार कर लिया. इस घटना ने पूज़ो के मन में प्रकाशकों के बारे में सारा रोष धो डाला.

माफिया में प्रकाशक को ऐसी क्या संभावनाएं दिखायी पड़ी थीं कि वह इतना रुपया पेशगी देने को तैयार हो गया था?

माफिया : क्या बला है?

माफिया का शाब्दिक अर्थ तो है 'पनाह की जगह, यानी शरणस्थल. पर आगे चलकर यह एक गुप्त संगठन के लिए रूढ़ हो गया, जो इटली में ऐसे शासकों के विरुद्ध जेहाद बोलता था जो सदियों से इटली और वहां की प्रजा पर दमनचक्र चला रहे थे. सबसे अधिक आतंक झेला था सिसिली-वासियों ने. त्राण पाने के लिए ये लोग भूमिगत विद्रोहियों की शरण में जाते. वास्तव में, जिस 'माफिया' का आरंभ गरीब-गुरबा को त्राण दिलाने के लिए हुआ था, आगे चलकर वही धनाढ्यों का ही नहीं, बल्कि कानून और राजनीतिक व्यवस्था की पिट्ठू पुलिस-व्यवस्था का पक्ष लेकर शोषण करने लगा था. हर छोटे-बड़े व्यवसायी या दुकानदार से ये लोग चौथ-सी वसूलते थे. माफिया सरदार से, जिसे डॉन कहा जाता था, सभी त्रस्त रहते थे. परंतु जो भी उसकी शरण में आ गया, उसकी रक्षा करना उसका धर्म हो जाता था. माफिया का इतना आतंक था कि मुसोलिनी जैसा डिक्टेटर भी समझने लगा था कि उसके लिए वे खतरा हो सकते हैं. इसलिए गरीब एक तो गरीबी और फिर माफिया के अत्याचारों से त्राण पाने के लिए वहां से भाग-भागकर अमरीका पहुंचने लगे और वहां से भी न्यूयार्क जैसे शहर में.

गॉडफादर कहां से मिला?

वहां अधिकतर लोग दक्षिणी सिसिली के निवासी थे. ऐसा अनुमान है (1960 के ही आंकड़े उपलब्ध हैं) कि अमेरिका में विदेशों में जन्मे अमरीकी-इतालवी लोगों की संख्या लगभग 11,00,000 थी तथा अमेरिका में जन्मे पहली पीढ़ी के इतालवी मूल के अमरीकियों की संख्या 3,28,000 थी. इनमें भी अधिकांश दक्षिणी सिसिली से सताये हुए लोगों की संतान थे (पूज़ो भी इसी श्रेणी का अमरीकी नागरिक है). स्वाभाविक है कि इनमें अपराधवृत्ति के लोग भी थे, जिनकी संख्या काफी बड़ी थी. कहना न होगा कि अमरीका ने अनजाने में ही अपराध के माहौल से निकले ऐसे लोगों का आयात अपने देश में कर लिया था. फिर सोने में सुहागा इस बात का कि गंदी बस्तियों में ये लोग नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे थे. पूज़ो ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि अमेरिका में संगठित अपराधों में इतालवी मूल यानी माफिया के प्रभावांतगत लोगों का काफी बड़ा हाथ है. इसका कारण यह है कि इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों ने सदियों से कष्ट और यंत्रणाएं झेल-कर अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखा है.

इसलिए यह बहुत दिलचस्प और अछूता विषय था, जिस पर अभी तक किसी लेखक ने गंभीरता से कलम नहीं चलायी थी. इसमें हिंसा, बलात्कार एवं गुंडागर्दी का ऐसा तानाबाना बुना जा सकता था कि किशोर-बुद्धि पाठकों के लिए वह बहुत बड़ा आकर्षण हो सकता था. इसीलिए प्रकाशकों ने पूज़ो के आगे टुकड़ा फेंका था.

भाड़ में गया साहित्य!

पर पूज़ो भी, आखिर लेखक बिरादरी का था. पेशगी रकम की पहली किस्त जेब में डालकर वह चुप बैठ गया. वास्तविकता यह थी कि पूज़ो 'द गॉडफादर' जैसा उपन्यास लिखना ही नहीं चाहता था. 'माफिया' जैसे असाहित्यिक विषय पर उपन्यास लिखकर वह अपने अंतःकरण की हत्या कैसे करता? परंतु पेशगी रकम की अगली किस्तें उपन्यास की प्रगति के साथ जुड़ी हुई थीं और पूज़ो को रुपया चाहिए था. यदि ऐसा न होता तो शायद यह उपन्यास कभी लिखा न जाता. क्योंकि पूज़ो ने एक अन्य उपन्यास की योजना बना रखी थी. परंतु एक बार जब 'द गॉडफादर' की बदौलत पूज़ो का भाग्योदय हुआ, तो साहित्य-साधना का भूत उसके सिर से उतर गया. प्रस्तावित साहित्यिक उपन्यास की सारी सामग्री धरी-धरायी रह गयी. इस संबंध में उसने लिखा है—**दूसरी चीजों की तरह उपन्यास की सामग्री भी सड़-गल जाती है!** अब अंतःकरण की आवाज उसे सुनायी नहीं पड़ी.

'द गॉडफादर' लिखने में पूज़ो को तीन बरस लगे. इस दौरान रोजी-रोटी के लिए वह और भी धंधे करता रहा. हर महीने तीन-तीन साहसिक कहानियां लिखता; एक बालपुस्तक भी लिखी; जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई; ढेर सारी समीक्षाएं लिखीं और पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी थोक के भाव लिखा. पूज़ो का कहना है कि इन तीन वर्षों में उसने जितना लिखा, उतना शायद सारी जिंदगी में उसने नहीं लिखा होगा. अंततः जुलाई, 1968 में उसने यह उपन्यास पूरा किया. पांडुलिपि प्रकाशकों को थमायी और पेशगी रकम के बकाया 1,200 डालर जेब में रख बीवी-बच्चों के साथ योरोप-यात्रा को निकल गया. **जाने से पहले उसने प्रकाशकों से स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि वह लौटकर पांडुलिपि को फिर से मांजेगा. इसके साथ ही उसने यह ताकीद भी कर दी कि उसकी अनुपस्थिति में यह पांडुलिपि किसी बाहरी आदमी को दिखायी न जाये.**

पर होनी को कुछ और ही मंजूर था. योरोप-यात्रा में 1,200 डालर फूंक और 8,000 डालर का नया कर्ज सिर पर चढ़ाये जब पूज़ो लौटा, तो आते ही उसे यह स्तंभित कर देने वाली खबर मिली कि एक प्रकाशक ने 'द गॉडफादर' का सस्ता संस्करण छापने के लिए 4,10,000 डालर यानी करीब 35 लाख रुपये की बोली लगाकर अधिकार प्राप्त कर लिये हैं. पूज़ो को विश्वास नहीं हुआ. कहीं कोई मजाक तो नहीं है. जिस लेखक को ये प्रकाशक घास नहीं डालते थे, हमेशा दुत्कारते रहे, उसी की 'द गॉडफादर' जैसी किताब पर पर इतनी ऊंची बोली! पर जब उसे पता लगा कि यह मजाक नहीं, असलियत है, तो उसने तुरंत अपनी मां को टेलीफोन करके यह शुभ संवाद सुनाया. मां को लगा कि बेटा बौरा गया है. वह अनपढ़ थी. फिर रकम इतनी बड़ी थी कि इकाई-दहाई-सैंकड़ा करके गिननी पड़ती थी. उस बुढ़िया की कल्पना भी गयी तो अधिक से अधिक 40,000 डालर तक.

पूज़ो दौड़ा-दौड़ा घर पहुंचा. बीवी टी. वी. के सामने बैठी ऊंघ रही थी. आते ही पूज़ो ने उसके गाल पर एक चुम्मा जड़ा और बोला, "प्रिये! अब रुपये-पैसे की चिंता नहीं. मेरी किताब, 4,10,000 डालर में बिक गयी!" परंतु पत्नी की आंखों में न विस्मय था, न अविश्वास. पति पहले भी इस तरह के झांसे दे चुका था. वह चुपचाप उठी और जाकर सो गयी. □

ग़ज़ल

● शतदल

आज तो है ख्वाब में, कल हाथ में खंजर न हो,
या तो उस बस्ती में, अब बारात-सा, मंज़र न हो!

आप कहते हैं तो कश्ती मोड़ देंगे हम मगर,
क्या जरूरी है कि तूफां अब किनारों पर न हो!

आप उसको पूजना चाहें तो पूजें शौक से,
पर यकीं कर लीजिए पहले कि वो पत्थर न हो!

क्या वजह है, रोशनी में भी नहीं सूरत दिखी?
सोचता हूं आईना हमसे कहीं बेहतर न हो!

यह नहीं मुमकिन, मुनासिब भी नहीं हम चुप रहें,
आप जब चाहें कि बस्ती में हमारा घर न हो!

अगले अंक में
किस्सा कोताह...
यह है गॉडफादर!
मात्र पैसा कमाने के लिए लिखे गये इस उपन्यास की रोमांचक कहानी, जिसकी केवल सस्ते संस्करणों की ही दो करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं और अभी बिक्री जारी है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...द काफी रोषपूर्ण हो गये थे. तभी माइक की कर्कश आवाज ...सुनायी पड़ी, "अरे दुष्ट, सीता मेरी है...."

यह सुनकर रावण का चेहरा फिर तमतमा उठा. रामचंद्रजी ...एक सरकंडे का बाण छोड़ा, जो रावण के कान को छीलता ...निकल गया. रावण ने अपनी तलवार कसकर पकड़ ली.

भीड़ तभी चिल्लायी, "बोल सियापति रामचंद्र की जय." ...पति ही कहा था भीड़ ने. रावण के चेहरे पर एक अजीब-सी ...छा गयी. उसके माथे पर सहसा पसीना छलछला उठा ...फिर न जाने कौन-सा दबा हुआ लावा उसके अंतरमन से ...पड़ा.

वो जोर से चीखा, "ये अन्याय है. सीता मेरी है. इस दुष्ट ...मेरी सीता छीन ली है."

भीड़ चौंकी. कैसे उल्टे सीधे डायलाग बोल रहा है यह गधा. ...तक रामचंद्र और रावण द्वंद्वयुद्ध करने लगे थे. फिर लाल-...आंखें तरेरकर रावण चिल्लाया, "छोड़ूंगा नहीं साले."

और देखते ही देखते उसने अपनी तलवार रामचंद्रजी के ...में घुसेड़ दी. सचमुच घुसेड़ दी. ताजे खून का फव्वारा-सा ...था उनके पेट से. भीड़ स्तब्ध. दूर खड़े लोगों ने सराहा, ...नेचुरल एक्टिंग की है."

पर तभी रावण छूट भागा. अब भीड़ की समझ में आया. ...नेचुरल एक्टिंग नहीं थी. रावण ने रामचंद्र को सचमुच मार ...था.

कटघरे में उस वक्त हनुमानजी गीता थामे इजलास को ...दिला रहे थे कि वो जो कुछ कहेंगे, सच कहेंगे, सच के ...वा कुछ भी नहीं कहेंगे.

"वो (रावण) जोर से चीखा, 'ये अन्याय है. सीता मेरी है. इस दुष्ट ने मेरी सीता छीन ली है.'
और देखते ही देखते उसने अपनी तलवार रामचंद्रजी के पेट में घुसेड़ दी. सचमुच घुसेड़ दी. ताजे खून का फव्वारा-सा छूटा था उनके पेट से. भीड़ स्तब्ध. दूर खड़े लोगों ने सराहा, "क्या नेचुरल एक्टिंग की है." पर तभी रावण छूट भागा. अब भीड़ की समझ में आया. वो नेचुरल एक्टिंग नहीं थी. रावण ने रामचंद्र को सचमुच मार डाला था."

रामवध

• बाला दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी वकील ने गला खंखारते हुए पूछा:

"आपका नाम क्या है?"

"होतीलाल, सरकार."

"क्या काम करते हैं आप?"

"साग-भाजी बेचता हूं हुजूर. मेरा बाप भी यही धंधा करता था."

"उस दिन दशहरे के रोज जो रावण का पार्ट करते समय दुलीचंद ने रामचंद्र बनाम केदारी का कत्ल किया था, उसके बारे में आप क्या क्या जानते हैं?"

होतीलाल सुनकर सोच में पड़ गया. क्या नहीं जानता है वो, बल्कि दुलीचंद भी, जो नहीं जानता था, वो उसी ने तो बतलाया था उसे.

प्रणय याचना में दुत्कारा मनुष्य जब विलेन का मुखौटा पहन लेता है तो कितना गिर जाता है, मानो बुर्जी पर चढ़कर कोई भारी पत्थर नीचे गिरा दे.

बड़े पशोपेश में पड़ गया है होतीलाल. बताओ, उसी से पूछा जा रहा है कि उस दिन की अनहोनी के बारे में वो क्या जानता है? ... पूरी कालोनी में बस यही चर्चा थी. गजब हो गया भैया, अबकी दशहरे पर रावण ने रामचंद्र को मार डाला. सचमुच मार डाला. केवल यह नहीं कि वो नाटक करते हुए 'हाऽऽ' करके लद्द से जमीन पर गिर गये हों. और फिर हर साल तो दुलीचंद 'हाऽऽ' करके घास पर गिरता था और लोग केदारी की जय बोलते थे, पर यह तो गजब ही हो गया भैया. सारी रामलीला ही उल्टी हो गयी. रामलीला क्या, रावणलीला हो गयी.

और अब तरह-तरह की बातें फैल रही हैं. कहते हैं, दुलीचंद की बहू सीतादेई और केदारी में कुछ गट्ट-सट्ट चल रही थी. कमाल है. आजकल जो हो जाये, सो थोड़ा है.

हर साल विभीषण बनने वाले दौलतिया काछी ने फुसफुसाया कि दुलीचंद की बैयर और केदारी में 'आसिक-मासूकी' जाने कब की चल रही थी. दुलीचंद को तो हवा तक नहीं लगने पायी, पर भुस में आग लगायी इस साले होतीलाल ने. वो खुद सीता पर डोरे डालने का चक्कर चला रहा था.

दौलतिया ने ही श्याम लाल को बतलाया, "ये साला होती, हाथ न पांव का और सूरत साले की बंदर जैसी. तभी साले को हनुमान का 'पारट' देते हैं."

"अरे हनुमान बाबा तो बिरमचारी बाबा थे. कहां ये बिड़चो कुकरमी और कहां वो जिंदगीभर कुंवारे रहने वाले बजरंग बली." श्यामलाल ने बीड़ी का बंडल दौलतिया की तरफ बढ़ाकर कहा.

बीड़ी सुलगाकर दौलतिया बोला, "दुलीचंद भी किसमत को हेठा है ससुर. सात साल बिया को हो गये और कोई आस-औलाद नहीं भयी. बड़ी मिन्नत, तावीज, गंडेबाजी भी भयी. कभी सैयद बाबा पर भागे तो कभी दुरगा बाबा की सेवा करे. अरे, अब साधू संन्यासी भी साले घासलेटी रह गये हैं यार."

श्याम लाल ने नाक से धुआं छोड़ते हुए कहा, "अब आयी समझ में सारी कहानी. बांझ बैयर जब मरजादा तोड़कर भागे है तो अगाड़ी-पिछाड़ी कुछ भी नहीं सोचे है. फिर असली तिरिया चरित्तर देखने को मिलता है प्यारे."

दौलतिया पास पड़ी तीली उठाकर कान कुरेदने लगा, "पहले इस होती ने ही जुगाड़ लगानी चाही, पर भैया दाने-दाने पर नाम लिखा होता है. उस बरस केदारी को रामचंद्रजी का पारट मिला ही मिला था. फिर केदारी ल्हास लंगड़ का भी है और भैया अंटी में नामे की गर्मी भी है."

श्याम लाल गंभीरता से सोचने लगा. उसकी आंखों के सामने कभी सीतादेई की सूरत चमक उठती तो कभी दुलीचंद की. दौलतिया बता रहा था. होती को सीता ने ऐसा झिड़का था फिर उसकी हिम्मत बढ़-बढ़कर बातें करने की नहीं हुई. होती ने ही सबसे पहले केदारी के लड़ते हुए पेंच देखे.

"हूं, तो केदारी के पौ बारह हो रहे हैं."

बड़ी ही विकृत सूरत बन गयी थी होती की. उसी दिन से वो साये की तरह पीछा करता रहा.

▣

सीतादेई के पांव लड़खड़ा गये थे. वो स्वयं केदारी से मिलने भगतराम की बगीची में आती. भरी दुपहरिया में बड़ के पेड़ के नीचे केदारी से बातें करते नहीं अघाती. होती को सबसे पहले सूसट सूरजभान के नाती राधे ने दी थी.

"लो गुरु, कलजुग की बहार भी देख लो. आजकल हमारे रामचंद्रजी सीता से रोजाना स्वयंवर रचा रहे हैं. कमाल है यार. और वो हमारा रामण बेखबरी से सो रिया है. सुबह खोमचा लेकर निकले हैं तो संझा को जीभ निकाले घर लौटे. अब बिसै क्या मालूम कि उसकी ब्याहता सीता इधर अपने राम से मन हलका कर रही है."

होती के दिल पर सांप लोट गया.

"अच्छा हरामजादी, मुझसे तो सती-सावित्री बन रही और केदारी के साथ गुलछर्रे उड़ रहे हैं. रंगे हाथ नहीं पकड़ा तो मेरा नाम होती नहीं."

उस दिन बड़ी गर्म लू चल रही थी. दोपहर को अजीब सन्नाटा था. जमीन कैसी तप रही थी. ऐसे वक्त निकली सीतादेई. बगीची भी सुनसान पड़ी थी. ग्यासिया पुजारी बड़ के पेड़ के नीचे इधर-उधर करवट बदल रहा था.

"हे भगवान! आग बरसा रहे हो पिरभू आप तो." वो कभी कराहकर बोल उठता.

कुएं के पीछे वाले बड़ के नीचे केदारी बैठा था. कटोरदान में मलाई की बर्फ भरी थी. जरा-सी भी पत्तों की खड़बड़ हो तो वो चौंककर बगीची के अधटिके फाटक की ओर उत्सुकता से देखने लगता.

सीता के आते ही केदारी उस झुलसने वाली लू में भी खिल उठा. केदारी और वो बर्फ खाने में जुट गये थे. कुएं की ओट खड़े होती की हरेक सांस फुफकार बनती चली गयी और उसने ने दुलीचंद को चेताया था.

दुलीचंद ने सुनकर उसका गरेबान पकड़कर इतने जोर से हिलाया था कि उसकी घिग्घी बंध गयी थी.

"गंगा मैया की सौगंध खाकर कह रिया हूं दुलीचंद भैया, भला मुझे बेफिजूल में कीचड़ उछालने से क्या मतलब."

दुलीचंद ने उसकी गर्दन छोड़ दी, पर सहसा वो इतना गु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया, मानो जन्म का गूंगा हो. उसके कानों में अजीब-सी झनझनाहट होने लगी, जैसे हजारों झींगुर सहसा बोल उठे हों. मन में खामोश तूफान उमड़ पड़े थे. बड़ी देर तक वो होती को ताकता रहा. फिर न जाने क्यों उसे लगा कि उसके ढहते हुए विश्वास को सहसा कोई सहारा मिल गया है.

"कानों सुनी और आंखों-देखी में जमीन आसमान का फरक होता है."

"मैं आंखों देखी कह रहा हूं भैया, गऊ माता का मांस खाऊं, अगर इसमें रत्ती भर भी झूठ हो."

दुलीचंद को जैसे बिच्छू ने काट लिया हो. उसने झटके से होती के गरेबान को फिर पकड़ लिया, "मैं तेरी आंखों की नहीं कह रहा हूं साले, अपनी आंखों की कह रहा हूं. अगर मुझे मेरी आंखों से नहीं दिखलाया तो तेरा खून पी जाऊंगा."

होती यह सुनकर हिल गया था.

"पक्की रही भैया, जल्ली ही दिखा दूंगा. फिर तो बिसवास होगा."

और उसी दिन से होती पीछे लगा रहा.

▣

दशहरा सिर पर खड़ा था. बाबू बृजकिशोर ने कालोनी वालों से चंदा लेना शुरू कर दिया था. हर हाल यही होता आया है. घर-घर जाकर चंदा लेते और फिर सामने के पार्क में रामलीला होती. फजलू मियां बीस दिन पहले आकर आदाब अर्ज करके खड़े हो जाते, "बिरजू बाबू, कागज के दाम तो आसमान छू रहे हैं बाबू साब, मैदा नापैद हो गयी है. लेई बनाने भर को मिल जाये तो गनीमत समझो."

हर साल ही फजलू मियां दाम बढ़वा लेते हैं. बीस साल से उनका खानदान रावण बना रहा है. हर साल रावण महंगा होता जाता है. इस कालोनी में सिर्फ एक ही रावण बनता है. आदर्श नगर में मालदार लोग रहते हैं तो तीन तीन पुतले बनते हैं— रावण, कुंभकर्ण और मेघनाद.

कागज के रावण के साथ-साथ चलते फिरते रावण ने भी रेट बढ़ा दिये हैं. दुलीचंद पहले पांच रुपये लेता था. अब दस की रट लगाये है. उसकी देखा-देखी रामचंद्रजी ने भी अपना भाव बढ़ा दिया है, पर हनुमानजी आज भी पुराने रेट पर चल रहे हैं. होतीलाल ने भी अपनी चाल बदली, पर बिरजू बाबू अड़ गये.

"नहीं भैया, तुम्हारा काम भी तो ज्यादा नहीं है. एक आध घंटे की उछलकूद के पांच रुपये कम नहीं होते हैं. और फिर फल-फ्रूट भी तो खाने को मिल जाते हैं."

हनुमानजी का भाव नहीं बढ़ पाया.

▣

जब से होती ने दुलीचंद को वो बात बतलायी थी, तबसे दुलीचंद केदारी से पहले जैसी बेबाक बात नहीं करता है. इससे पहले राम और रावण संग बैठकर बीड़ी पीते, गप्पें मारते और फिर ठीक समय पर अपने-अपने मुकुट संभालते हुए उठ पड़ते.

बुध का दशहरा था. मंगल की दोपहर को होती भागा-भागा दुलीचंद के पास आया था. दुलीचंद ने अपनी टिकिया-पकौड़ी का खोमचा सम्मन दर्जी की दूकान पर ढक कर रख दिया.

"अभी आता हूं सम्मन गुरु, जरा खोमचे पर नजर रखना."

उसके सीने में दिल घन चलाने लगा था. होती उसे बगीची ले गया. उस वक्त सीता और केदारी चल पड़े थे. दुलीचंद आज भी अपनी आंखों से और कुछ तो नहीं देख पाया, पर हां, दोनों बाहर आ रहे थे, साथ-साथ. वहीं दुबककर दुलीचंद बैठ गया. होती उसकी आंखों से निकलते दहकते अंगारे देख रहा था.

तभी दुलीचंद सहसा रो पड़ा, जैसे कमजोर बच्चा रो पड़ता है. उस समय होती की सांस रुक-सी गयी. उसके अंतरमन से एक हूक उठी. उसको दुलीचंद को यह सब नहीं बतलाना था. दुलीचंद की हालत देखकर होती एकबारगी सिहर उठा. असहाय के रुदन में कितनी करुणा घुली होती है, उसे आज ज्ञात हुआ. उस रात दुलीचंद कितना गुम-सुम रहा था. सीता ने कई बार उससे हंसकर पूछा, "आज इतने उदास क्यों हो?" पर दुलीचंद जैसे बहरा हो गया हो, जैसे उसे सीता की आवाज सुनाई ही नहीं दे रही हो. एक बार तो सीता का दिल भी धक करके रह गया. कहीं शक तो नहीं हो गया इन्हें? कहीं किसी ने टोह तो नहीं दे दी?

रातभर दुलीचंद करवट बदलता रहा. न जाने नींद कौन देस चली गयी थी. सोचते-सोचते कभी दुलीचंद मुस्करा उठता और अंदर ही अंदर उसका ब्रह्म बोलने लगता.

"अरे, ये दुनिया वाले क्या जानेंगे कि कलयुग के रावण की ब्याहता 'पतनी' सीता को राम राच्छस छीने ले रहा है. रामायण कैसी उल्टी हो गयी है, तेरी जिनगी की दुलीचंद. हाथ पर हाथ रखकर बैठने से क्या फायदा. नियाव कर नियाव." पर-इस्त्री पर हाथ डालने की सजा जालिम को हमेशा से मिली है दुलीचंद, हमेशा से मिली है. दुनिया से नियाव का आसरा मत रख. अपने हाथ उठाओ संतन की सेवा. अपने हाथ उठाने पड़ेंगे भैया, वर्ना जीते जी हजार मौत मर जायेगा अभागे. कुम्हार के आवे की तरह तपता रहा दुलीचंद.

▣

दशहरे की शाम को उसने रावण के कपड़े पहने और फिर कोयले से चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूंछें बनायी थीं. आज कई बरस बाद उसने तलवार पर धार रखी थी. तलवार तो वो उल्टी-सीधी घुमाया करता था. उस वक्त ढोल ढमढमाढमढम बजने लगता. थोड़ी देर लड़कर वो 'हा हा' करके लेट जाता और तभी फजल मियां अपने रावण में आग लगा देते.

....होती के हृदय में न जाने कहां से हनुमान का साहस जाग उठा था. कोई दो मिनट वो टूटा हुआ होती बना खड़ा रहा और फिर उसके अंदर हनुमान का सत्य बोलने लगा.

कटहरे में खड़े-खड़े उसने जज की तरफ मुड़कर कहा, "हुजूर, चाहे फांसी लगाओ, चाहे बक्स दो, पर अब बोलूंगा सच ही. केदारी को मैंने मरवाया." ...और कटघरे में खड़े हनुमानजी ने उस साल की रामलीला का कच्चा चिट्ठा सुनाना आरंभ कर दिया. ☐

● एफ-48 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कब तक

• परितोष चक्रवर्ती

आज फिर दशरथ पर शर्मा साहब उखड़ गये थे. उनके कमरे से जोर-जोर से चीखने की आवाज सुनकर हम सब कॉरिडोर में इकट्ठे हो गये. कमरे से आवाज आ रही थी, . . ."यू रास्कल, तुम अंधे हो गये थे जो तुम्हें इतना बड़ा मरा हुआ चूहा नहीं दिखाई दिया?. . ."

"साहब हमसे गलती हो गयी. चूहा दराज में है, हम नहीं जान सका. . .?"

"गधे हो तुम . . ! कोई काम सलीके से तुमसे करते नहीं बनता है. . .टेबल साफ करते वक्त ही दराज को देख लिया होता...!" इसके साथ ही अंग्रेजी-हिंदी की कुछ गालियां और उछाल दी गयीं.

यह कोई नयी बात नहीं थी. आये दिन शर्मा साहब के गुस्से का शिकार किसी न किसी को होना ही पड़ता. दशरथ उनका निजी चपरासी है. उस पर बरसने का तो जैसे शर्मा साहब को अतिरिक्त अधिकार-सा है.

दरअसल दो दिन पहले चूहों के उत्पात से तंग आकर बड़े बाबू ने पेड़े में चूहे मारने की दवा मिलाकर फाइलों वाले रैक में रख छोड़ा था. यह किस पता था कि दवा खाकर चूहा सीधे शर्मा साहब के दराज में जाकर ही शहीद होगा. चूहे की इस गलती की सजा बेचारे दशरथ को झेलनी पड़ी थी.

दफ्तर नाम की जगह ही ऐसी है जहां छोटी-छोटी-सी बातों पर शोध होने लगता है. सुबह की इस घटना से स्टाफ वालों को दिन भर का मसाला मिल गया था.

▣

चंद रोज पहले की तो बात है जब ऑफिस की सीढ़ियों पर से शर्मा साहब को गोद में उठाकर दशरथ ने उन्हें ह्वील चेयर पर रखा तो बाहर खड़े कस्टमर्स की कौतुहल भरी निगाहें साहब की ओर उठ गयी थीं. लोग बड़ी तल्लीनता से देखने लगे थे. उन्हें जब पता चला कि यह व्यक्ति इस दफ्तर के एक जिम्मेदार ऑफिसर है और बचपन से ही लकवे के कारण अपाहिज है तो उनकी जिज्ञासा और अधिक बढ़ गयी. इधर अपने कमरे में आते ही शर्मा साहब बड़-बड़ाने लगे थे, "दीज बगर्स आर रीयली जंगली. . ." अक्सर ऐसा होता है. शर्मा सावह पार्टियों, जलसों में भी ह्वील चेयर पर बैठे फर्राटे से अंग्रेजी में बतियाते हुए दर्शनीय बन जाया करते. उनका पूरा दायां अंग ही लकवे से प्रभावित है. लकवे के कारण गर्दन के आसपास की मांसपेशियों में इतनी कठोरता आ गयी है कि वे गर्दन किसी भी दिशा में नहीं मोड़ सकते. जिस ओर देखना हो, पहले ह्वील चेयर को उस दिशा में मोड़ते फिर देखते. उन्हें सुनाई भी कम

"दशरथ साहब के दोहरे व्यवहार के बीच पिस रहा है. एक तरफ कंटीली झाड़ियां हैं तो दूसरी तरफ दूब की छुअन. हमारे हिस्से आयी है मात्र खुरदुरी चट्टान सी रुखाई, बावजूद इन अलग-अलग स्थितियों के, दशरथ और हमारी परेशानी एक बिंदु पर आकर जुड़ती अवश्य है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

…ा. इसलिए जरूरत के अनुसार वे इयरफोन काम में लाते. …ी हालत में उनका चौबिस घंटे का साथी है दशरथ—एक तरह …र्मा साहब की जिंदगी का सही साझीदार.

दशरथ और शर्मा साहब एक-दूसरे के पूरक बन गये थे, …ब की चर्चा छिड़ते ही लोग अनायास दशरथ की भी चर्चा …ने लगते "…दशरथ की भी कोई जिंदगी है, चौबीस घंटे एक …ाहिज की सेवा करते रहो बस…"

बड़े बाबू चार-छह दिन में एक-आध बार अवश्य ही कह लिया …ते, "खाना-पीना छोड़कर दशरथ को सिर्फ डेढ़ सौ रुपया मिलता …ता! आज के जमाने में इससे पानी भी गरम नहीं होता. साहब …समझते भाया कि इसी दशरथ के बल पर उनकी साहबी …ती है. दशरथ को सारथी कहा करो भाया सारथी…"

भगवती बाबू ने बड़े बाबू से भी अधिक वजनदार शब्दों में …ी बात कहनी चाही. उनके चेहरे के भाव कुछ ऐसे थे कि साहब …र अक्सर जाते रहने के कारण उनके बारे में कही गयी उनकी …ें ज्यादा प्रामाणिक हैं, "…अरे यहां तो शर्मा साहब ऐसे अकड़ते …र घर पर तो दशरथ को इतने प्यार से बुलाते हैं कि पूछो मत, …अपनी बीवी को कोई बुला रहा हो…"

वाक्य पूरा होने से पहले ही बड़े बाबू ने दहला फेंकने के अंदाज …हा, "चलो अच्छा है भाया! इस जन्म में साहब की शादी तो …ई नहीं, बेचारा दशरथ बीवी जैसी सेवा व टहल तो कर ही …है."

भगवती बाबू पुनः अपनी बात पर लौट आये, "मेरी समझ …ह नहीं आता कि ऑफिस आते ही साहब के तेवर बदल क्यों …हैं?…"

बेडेकर औरों की अपेक्षा जूनियर है, उससे रहा नहीं गया. उसने …, "दशरथ को छोड़ो, हमसे भी तो साहब ऐसे ही ट्रीट करते हैं …" बेडेकर वाक्य अधूरा छोड़ देता है. बेडेकर की इस टिप्पणी …माहौल में कुछ तबदीली से आ जाती है और सब अपने-… अनुभव सुनाने में जुट जाते हैं कि कैसे साहब ने उनके साथ …कों की और उन्होंने भरपूर जवाब दिया था. (भले ही …ने सिर झुकाये सुनते रहे हों पर ऐसी शेखी बघारने में किसका … जाता है)

हम सोचते यदि शर्मा साहब ब्रिगेडियर शर्मा के बेटे न हुए …तो जाने क्या हाल हुआ होता उनका. ब्रिगेडियर शर्मा को …इस तीसरे बच्चे के छह मास की उम्र में लकवे के कारण …हो जाने का दुख अंत तक सालता रहा. फिर भी उन्होंने …भिन्न प्रयास किया था कि शरीर न सही, बच्चे का मानसिक …स ठीक-ठाक हो जाये. वे स्वयं अंदर से टूटे हुए बच्चे का …त्मविश्वास बनाये रखते ताकि बच्चे पर हीनग्रंथियां हावी न …पायें. ब्रिगेडियर शर्मा इस प्रख्यात फर्म के प्रतिभावान मैनेजर …स फर्म पर ब्रिगेडियर साहब के ढेर से एहसान थे. उनकी स्थिति …हिस्सेदार से किसी माने में कम नहीं थी. इसीलिए जब अचानक …डियर साहब कार दुर्घटना में चल बसे तो फर्म ने उनके पंगु …कॉन्वेंट में पढ़े, बेटे को सीधे अफसर के पद पर नियुक्त कर …या. जबकि शर्मा साहब के अन्य दो भाई सेना में साधारण पदों पर कार्यरत हैं.

पहले-पहल सबको शर्मा साहब एक अजूबा लगते. दो-एक माह तो उनके शारीरिक ढांचे को समझने में ही लगे थे कि बायें हाथ से वे कैसे लिख लेते हैं, व्हील चेयर से उठाकर दशरथ उन्हें गाड़ी पर कैसे बिठाता है, एक ही हाथ से वे सिगरेट कैसे जला लेते हैं, टेलीफोन का रिसीवर किस अजीब अंदाज से उठाते हैं—आदि आदि.

अब सब लोग इसके अभ्यस्त हो गये थे. यह सच है कि वे सिर्फ अफसर ही हो सकते थे. कितने ऐसे पढ़े-लिखे युवक हैं जो किसी दुर्घटना या बीमारी में अपंग हुए होंगे किंतु उन्हें पूर्णतः अयोग्य करार दिया जाता है. अफसरी मिलना तो उनके लिए एक सपना ही हो सकता है.

▣

दशरथ को जब भी फुरसत मिलती वह हम लोगों के पास आकर बैठता. कभी अपने दुखों का जिक्र करता तो कभी अपनी गांव की बातें हमें बताता. इस इकतीस वर्षीय युवक के मन में पढ़ाई-लिखाई की इच्छा आज भी दबी हुई है. अपनी स्वयं की कोशिश का परिणाम है कि आज दशरथ को हिंदी-अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान अन्य चपरासियों की तुलना में अधिक है. दशरथ अपनी परिस्थितियों से उबरना चाहता है. परिस्थितियों के आगे अपनी सीमा पर वह भी मजबूर है. हम सब दशरथ के दुःख में अपने को शरीक पाते. कहीं न कहीं हम सब भी तो शर्मा साहब के व्यवहार से त्रस्त हैं. दशरथ के साथ हमारी सहानुभूति का संभवतः यह भी एक ठोस कारण है.

उसे घर जाने की छुट्टी बड़ी मुश्किल से मिलती. जब भी वह आठ-दस दिन के लिए घर जाता, शर्मा साहब के मिजाज को बुखार चढ़ जाता. जब देखो किसी न किसी पर बरसते रहते. हम सबको उनकी कुछ न कुछ निजी सेवा करनी पड़ती. उन दिनों दशरथ हमें खूब याद आता.

दशरथ अक्सर कहा करता :

"साहब चाहें तो हमें कहीं लगवा सकते हैं पर वे चाहते नहीं हैं कि हमारा कोई भला हो…"

"हमें क्या जिंदगी भर इनकी सेवा करनी होगी—हम अपने लिए क्या करेंगे?"

"तंग आ गये बाबूजी! कहीं भी कोई नौकरी दिलवा दो तो इस डिप्टी को राम राम."

▣

जहां तक शर्मा साहब की शारीरिक स्थिति का सवाल है, पहली नजर में हरेक की सहानुभूति उनके साथ हो जाती थी. कोई दूसरा होता तो शायद इस संवेदना की कोमलता अपने हक में भुना सकता था. किंतु वे इसके ठीक विपरीत थे. उनके घर के हालात से हम उतने ही वाकिफ थे जितना हमें दशरथ से पता चलता था किंतु ऑफिस के रवैये से तो हम सबको ही निपटना पड़ता था. हम अच्छी तरह समझ गये थे कि ऑफिस में इन्हें शारीरिक रूप से अधूरेपन का एहसास बेहद खलता है. कस्टमर हो या स्टाफ का कोई आदमी, वे पहली ही बार में इतनी तेजी से उस पर हावी हो जाना चाहते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

योगेंद्रदत्त शर्मा

अबके सावन में महतो पर जाने क्या बीता होगा,
चुप्पी साधे ओसारे में गुड़गुड़िया पीता होगा!

झोल खाट पर बूढ़ी मां की देह पड़ी होगी ठंडी,
तुलसी-दल कुम्हलाया होगा, गंगाजल रीता होगा!

भरी आंख हिरनी आ दुबकी होगी कोने में सहमी,
हर सिवान पर घात लगाये फिर कोई चीता होगा!

खेतों की सूनी आंखों से आंसू छलक पड़े होंगे,
बंटवारे के लिए गांव में फिर आया फीता होगा!

टूटी छत, ढहती दीवारें, उखड़े देहरी-दरवाजे,
जाने कैसे आंगन वाला पीपल अब जीता होगा!

सूखे में झुलसा होगा या बाढ़ों में डूबा होगा,
उस बस्ती के हर छप्पर का हर अनुभव तीता होगा!

गांव छोड़कर राह शहर की पकड़ी होगी गोबर ने,
भीतर-भीतर होरी अपने जख्मों को सीता होगा!

नौटंकी में गुमसुम बैठी सोच रही हीराबाई,
कहां तीसरी कसम उठाता हीरामन मीता होगा!

थे कि सामने वाले पर उनके पूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव और गहरा जाये. हिंदी-भाषी क्षेत्र में साधारण जनता को अंग्रेजी से स्वाभाविक रूप से अधिक लगाव नहीं होता. स्टाफ के लोगों में काम चलाऊ अंग्रेजी ही ज्यादा सम्मानित थी. ऐसी स्थिति में शर्मा साहब की चेरीब्लाजम की पॉलिश की तरह चमचमाती अंग्रेजी से अच्छे-अच्छों की आंखें चौंधिया जातीं. एक अर्थ में उनके हाथ-पांव की बनावट को अंग्रेजी एक खोल की तरह ढक लेती. इसलिए उनके कमरे से बाहर निकलता हुआ आदमी शर्मा साहब की, अपंगता को बिल्कुल भूल चुका होता है. उसे बस याद रह जाता है कि. . आज वास्ता एक सही साहब से पड़ा था, सचमुच के साहब. . . . इसका मतलब यह कतई नहीं कि और साहबों की कीमत घट जाती है. होता यह है कि दूसरे साहबों के साथ हमारे मन में कोई सहानुभूति नहीं होती. इसीलिए अन्य साहबों का व्यक्तित्व हमारे सोच के अनुकूल होता है पर शर्मा साहब से पहली बार मिलने पर मन के किसी कोने में जरूर वह प्राथमिक सद्भावना होती है जो किसी लंगड़े, लूले, अंधे के लिए, स्वाभाविक रूप से होती रही है.

टाइपिस्ट स्वामीनाथन कई घाटों से अनुभव लेकर पिछले कुछ सालों से इसी ऑफिस में है. स्वभाव से तीखा किंतु काम में बेहद चुस्त. टाइपराइटर पर उसकी उंगलियां बड़ी तेजी से दौड़तीं इसलिए ऑफिस में उसे 'सुपरसोनिक' स्वामीनाथन कहा जाता. पता नहीं क्या बात थी कि स्वामीनाथन प्रारंभ से ही शर्मा सा… से चिढ़-सा गया था. जबकि हमारे साथ उनसे छिटकने की नौ… काफी दिनों बाद आयी थी. स्वामीनाथन अपने उसी तीखे अं… और दक्षिण भारतीय हिंदी में कहता, "साल्ला बड़ा आदमी… बेटा है न इसलिए साहब ही पैदा हुआ था. नइं तो हम हाथ-… वाला होकर क्या इसकी गुलामी करता. बताओ?" वह इस… में पूछता मानो वह सीधे शर्मा साहब से ही पूछ रहा… "बताओ?" अक्सर शर्मा साहब से उसकी झड़प होती और… वक्त वह शर्मा साहब से कहता, "हम सब काम करेगा लेकिन ह… प्यार से बोलिये. हम सब करेगा!" और फिर उबलते हुए ह… पास आता, "साला हमको जानवर का माफिक ट्रीट करता… देखना, एक दिन इसको उठाकर फेंक देगा." हम इस… को सुनते और मुस्करा देते. मुस्कराने के पीछे दो भाव थे एक यह… स्वामीनाथन ऐसा कतई नहीं कर सकता. दूसरा यह कि… किसी दिन सचमुच पटक ही दिया तो हम सब मुक्त हो जा…

शर्मा साहब—जो दशरथ और ह्वील चेयर के बिना एक … भी नहीं चल सकते थे न हिल-डुल सकते थे—उन्होंने स्टाफ … हिलना-डुलना ही बंद कर दिया था. बाहर वालों को ल… ऑफिस में कड़ा अनुशासन है पर सही अर्थों में यह … और था. 'कुछ' क्या था इस पर सबका नजरिया अलग-अ… हुआ करता.

बेडेकर का असेसमेंट था :

"यह आदमी अगर अपंग है तो क्या हुआ, इसके हाथ में … है. पावर मिले तो चूहे भी चंदगीराम (पहलवान) हो जाते…

जबकि बड़े बाबू कुछ सहानुभूति दर्शाते हुए समीक्षा क…

"भाया! बचपन से इसे लोगों ने दया का पात्र समझा… आज उसके पास ऐसा स्टेटस है कि इसकी दया की कइयों को ज… है—क्यों भाया? साधारण आदमी होता तो अपनी अ… दिखाने की उसे इतनी हड़बड़ी नहीं होती. यह पट्ठा अधूरा … है इसलिए इसे अपने को पूरा आदमी बतलाने की जल्दी है समझे…

बड़े बाबू का नजरिया हमेशा शर्मा साहब के प्रति ऐ… रहा जैसे साहब बड़े दीन-हीन हैं और उन्हें माफ किया जा … है. किंतु स्वामीनाथन कतई इससे सहमत नहीं होता.

"बड़े बाबू, आपका सिंपैथी हमारा समझ में नहीं आत… साल्ला दूसरा कोई डिसएबल को डायरेक्ट ऑफिसर होते… है? इसका फोरफादर का पुण्य है कि आज साला खाली… में साहब बन गया. मिहनत से नौकरी पाता तो आदमी … डोनेशन में मिले सर्विस से इसका माथा आसमान में है."

स्वामीनाथन की तीखी टिप्पणी से अक्सर चर्चाओं को … लग जाता क्योंकि स्वामीनाथन अपनी बात मनवाने के लिए … तेज बोलने लगता और साहब के कमरे में सुनाई दे जा… खतरा पैदा हो जाता.

▣

हर ऑफिस में अफसरों एवं गैर-अफसरों के बीच एक वि… रेखा होती है. अपवाद को छोड़कर इन सरहदों को सिर्फ का… लिए छुआ जाता है. अन्यथा दोनों समूह एक-दूसरे से … रहना ज्यादा अच्छा समझते हैं. हमारा भी चिंतन शर्मा सा…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

सुरक्षित स्थान

▣ अनीस अमरोहवी

सैलाब का जोर लगातार बढ़ता ही जा रहा था और पानी का तल धीरे-धीरे ऊंचा हो रहा था. सारा गांव खाली हो गया था. बहुत से लोग तो सैलाब के समाचार सुनकर पहले ही गांव छोड़कर चले गये थे और बाकी लोग पानी का जोर बढ़ने पर चले गये थे. कितनी ही झोंपड़ियां अपना नामो-निशान छोड़े बिना ही गायब हो गयी थीं. अजीब अफरा-तफरी का वातावरण था.

वह अपने बूढ़े मां-बाप के साथ एक मजबूत मचान पर बैठी थी. ये लोग कोई प्रबंध न होने के कारण रह गये थे. मचान काफी मजबूत था वरना अब तक इन तीनों सहित किसी भयानक मंजिल की तरफ बह निकलता.

शाम का वक्त था. दूर-दूर तक मौजें मारता हुआ पानी और सिर्फ पानी ही दिखाई दे रहा था. दूर पानी के उस पार सूर्य के डूबने का दृश्य ऐसा लग रहा था जैसे सूर्य इस तबाही की खुशी में स्नान कर रहा हो.

इन क्षणों में उसने अपने बूढ़े बाप की आंखों में निराशा और बेबसी की परछाइयां लहराती हुई देखी थीं, फिर भी कोई उम्मीद और उस उम्मीद की हल्की-सी किरण उसके दिल की धड़कन बनी हुई थी. वह निराश नहीं थी.

अचानक शाम के धुंधलके में उसे दूर एक नाव दिखाई दी, जो लम्हा-लम्हा उनके मचान से करीब होती जा रही थी. शायद नाव में सवार लोगों ने उनको देख लिया था. लड़की के चेहरे पर उल्लास और खुशी की एक हल्की-सी लहर दौड़ गयी, और उसी क्षण बूढ़े मां-बाप की आंखों में जिंदगी फिर से लौट आयी.

नाव में सवार एक सहायता दल था जो सैलाब में घिरे हुए लोगों की सहायता करने निकला था. नाव जब मचान के करीब पहुंची तो एक नवयुवक ने उनसे कहा, "आप लोग नीचे उतर आइये और नाव पर आ जाइये ताकि आपको सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया जाये."

न जाने क्या सोचकर लड़की कुछ झिझकी थी परंतु परिस्थिति और समय ऐसा न था कि वह इनकार कर देती. थोड़ी ही देर बाद वह मां-बाप के साथ नाव पर सवार किसी सुरक्षित स्थान की ओर जा रही थी.

नाव में वह एक तरफ को सिकुड़ी हुई बैठी थी. कई घंटे लगातार पानी में चलने के बाद नाव एक ऐसे स्थान पर रुकी जहां से खुश्की शुरू होती थी. वह भी अपने मां-बाप के साथ नाव से उतर पड़ी.

"यह रात तुम लोगों को यहीं बितानी पड़ेगी. कल सुबह होते ही तुम्हें सहायता कैंप में पहुंचा दिया जायेगा." सहायता दल में से एक नवयुवक ने उनसे कहा.

अगली सुबह जब लड़की के बाप और उसकी मां की आंख खुली तो उनकी बेटी का कहीं पता नहीं था और उस सहायता दल के वे नवयुवक भी गायब थे—बूढ़े की आंखें उस सुरक्षित स्थान से पानी के तल पर दूर तक उस सहायता दल को तलाश करने लगीं जो सैलाब में घिरे लोगों को सहायता कैंप में लाने के लिए वापस जा चुका था. ☐

...उतना ही एकांगी था जितना उनका हमारे लिए. हमारे ...दशरथ भी शामिल है. फिर भी दशरथ की स्थिति हमसे ...है. अकेला वही है जिसकी सहानुभूति से शर्मा साहब को ...आपत्ति नहीं. एक तरह से दशरथ से सहानुभूति की अपेक्षा ...को बनी रहती है. दशरथ ने बताया था कि साहब घर पर ...बदल जाते हैं—कोई छोटा बच्चा जैसे अपनी मां पर निर्भर ...है ठीक वैसे ही साहब भी दशरथ के अधीन हो जाते हैं. ऐसा भी ...है. जब साहब सीमा से अधिक पीने की मांग करते तो दशरथ ...और देने के लिए राजी नहीं होता. तब साहब बच्चों की ...जिद करने लगते.

ऐसा क्यों होता है, यह हमारी समझ में तो क्या स्वयं दशरथ ...समझ में नहीं आता. इस दोहरे व्यक्तित्व की सीधी मार से वह इतना परेशान है कि उसे भी ताव आ जाता. तब वह हमसे आकर कहता, "भाड़ में जाये ऐसी नौकरी. . .अपने गांव चला जाऊंगा. . . मिहनत-मजूरी से कुछ तो मिलेगा. . .नहीं तो पगला जाऊंगा एक दिन. . !"

दशरथ साहब के दोहरे व्यवहार के बीच पिस रहा है. एक तरफ कंटीली झाड़ियां तो दूसरी तरफ नरम दूब की छुअन. हमारे हिस्से आयी है मात्र खुरदरी चट्टान-सी रुखाई और निर्लिप्तता. बावजूद इन अलग-अलग स्थितियों के दशरथ और हमारी परेशानी एक बिंदु पर आकर जुड़ती अवश्य है, वह है साहब की अपंगता.

शायद हम सब ही हीन-ग्रंथि के शिकार हो गये हैं जो एक अपंग को इतने अधिकारों को समेटे हुए देखना पसंद नहीं कर पा रहे हैं या अपंग के प्रति दया दिखाने का हमारा जन्मसिद्ध अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार यहां बेकार सावित हो गया है. चाहे जो हो, यह सही है कि हम इस स्थिति में रहकर एक अजीब-सी बेचैनी को झेल रहे हैं. विद्रोह करने की दशा में हममें से कोई नहीं है. सबको अपनी नौकरी प्यारी है. पीठ पीछे बक-झक करते हुए हम अपनी भड़ास ही निकाल सकते हैं.

पिछले दिनों एक छोटी-सी गलती पर स्वामीनाथन को चार्जशीट दे दी गयी थी. लाख स्पष्टीकरण के बावजूद उसका एक इन्क्रीमेंट बंद कर दिया गया था. यूं देखा जाये तो स्वामीनाथन की गलती अवश्य थी किंतु वह तो अप्रत्यक्ष कही गयी बात थी जिसका कोई प्रमाण भी नहीं था. उसने तैश में आकर अपनी उसी तीखी जबान में एक दिन हमारे पास बात-बात में कह दिया था. . .'लूले लंगड़े महा उपाई'. . . तकरीबन चिल्लाने की आवाज में कही गयी ये बातें शर्मा साहब ने सुन ली थीं और स्वामीनाथन को एक इन्क्रीमेंट से हाथ धोना पड़ा. वह तो गनीमत थी कि नौकरी पर बात नहीं आयी, नहीं तो प्राइवेट फर्म में यह कोई बड़ी बात नहीं है.

■

उस दिन देर तक शर्मा साहब आये ही नहीं तो ऑफिस में उत्सव जैसा माहौल हो गया था. बहुत दिनों बाद जैसे एक साथ सबको लंबी कैद से मुक्ति मिली थी. किंतु थोड़ी देर बाद ही सबकी खुशी काफूर हो गयी जब शर्मा साहब अचानक आ गये. हम बातचीत में इतने मशगूल थे कि गाड़ी की आवाज भी सुनाई नहीं दी थी. इस हो-हल्ले के कारण एक सिरे से बड़े बाबू तक को डांट खानी पड़ी थी.

खास बात और भी थी कि शर्मा साहब का चेहरा अन्य दिनों की अपेक्षा ज्यादा तमतमाया हुआ था.

हमें तब और ज्यादा अजीब लगा जब डांटते हुए भी उनका चेहरा रोने का सा हो गया था. शायद पहली बार उन्हें हमारी सहानुभूति की आवश्यकता आ पड़ी थी. क्या दशरथ लंबी छुट्टी पर चला गया है या फिर कोई और हादसा हो गया? पहली बार हुआ कि डांट खाकर भी स्वामीनाथन चुप हो गया था.

लंच के समय एक आवाज से हम चौंक गये, "हम आज गांव जात हैं साहब लोग. . ."

"क्यों . . .क्या हो गया?"

"कुछ नहीं, हमसे इनकी (साहब की) जिनगी की साझेदारी अब ना होगी. . .हमारा भी कोई भविष्य है. . .गांव ही सही, मरेंगे तो नई न. . .आप सबसे मिलने आये हैं. . ." उसकी आवाज यहीं आकर थरथरा गयी. उसके पास भी जैसे इससे अधिक कहने को कुछ नहीं बचा था और हम भी सहसा चुप हो गये थे. थोड़ी देर तक दशरथ हमारे पास बैठा रहा. हमने उसे चाय पिलायी. उसने बताया कि जाने का निर्णय उसने खुद ही लिया है. साहब से कोई गर्मागर्मी नहीं हुई. तकलीफ उसकी अपनी थी इसीलिए वह जा रहा था. आखिर कब तक वह अपने आप को समझा सकता था. जाते-जाते वह साहब से एक बार फिर मिलते हुए गया. उसके इस तरह से चले जाने से लगा कि सचमुच हम सबकी तुलना में दशरथ ही पूरा मर्द था. एक झटके से अलग हो गया.

आज शर्मा साहब ने एक नया नौकर रख लिया. यह नौकर कुछ प्रौढ़ है. कमोबेश शर्मा साहब के नये चपरासी से संबंध ही हैं जैसे दशरथ के साथ रहे. हमारे साथ भी उनके व्यवहार में कोई तब्दीली नहीं आयी.

उल्लेखनीय है तो बस इतना कि हाल ही में शर्मा साहब को एक प्रमोशन और मिल गया है. याने उनके रुतबे में कुछ और बढ़ोत्तरी हो गयी और बड़े बाबू अब ऑफिस सुपरिंटेंडेंट हो गये.

▣

ऑफिस से कुछ ही दूर चौक में आज मजदूर यूनियन की सभा हो रही है, कुछ लोग भूख हड़ताल पर बैठे हैं. माइक का एंगल कुछ ऐसा है कि आवाज ऑफिस तक साफ-साफ सुनाई दे रही है.

कोई मजदूर नेता कह रहा है, "दोस्तो, हमें अब इस व्यवस्था के खिलाफ उठ खड़े होना है. अब और बर्दाश्त नहीं किया जा सकता. व्यवस्था उतना दबाती है जितना हम दबते हैं. किसी व्यक्ति से नहीं इस व्यवस्था से हमारा विरोध है. एक पते की बात यह है दोस्तो कि व्यवस्था अपने आप में जड़ वस्तु है, अपंग है. हमारे हाथ-पांव ही उसके हाथ-पांव हैं, तब भला हमारे ही बल पर वह हम पर कैसे अकड़ सकता है? अब चेत जाओ दोस्तो ताकि व्यवस्था को यह एहसास हो जाये कि हम हाथ खींच लें तो व्यवस्था ठप हो जायेगी. . .क्या. .. . "

अचानक माइक की आवाज से भी तेज स्वर में शर्मा साहब की चीख सुनाई देती है, "खिड़कियां बंद कर दो! रास्कल्स! हल्ला कर रहे हैं कि काम करना ही मुश्किल हो गया है. व्यवस्था जड़ होती है. . .इनके कहने से. . .वास्टर्ड. . !"

● 3/72 रेलवे गुड्स शेड कॉलोनी, रायपुर (म. प्र.)

ग़ज़ल

जिसे खोया...

देवेंद्र गौतम

जिसे खोया, उसी को पा रहा
गुज़िश्ता वक़्त को दुहरा रहा

छुपाये दिल में अपनी तिश्नगी
समंदर की तरह लहरा रहा

तुम्हारी बद्दुआओं का असर
हरेक रस्ते पे ठोकर खा रहा

जहां दीवानगी फूली-फली
उन्हीं गलियों में देखा जा रहा

उमीदों के घरौंदे फिर बना
मैं अपने आप को बहला रहा

दरख़्तों का कहीं साया तो हो
बहुत लंबे सफ़र से आ रहा

▣

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या तुम चोरी कर सकते हो?"
"मुझमें इतना साहस नहीं है."
"तुम आत्महत्या भी नहीं कर सकते?"
"यह महापाप है."
"फिर तुमने विवाह ही क्यों किया?"
"मेरे पिता ने करवाया था."

वह सचमुच किसी काम के लायक नहीं था क्योंकि बचपन में मिली शिक्षाओं पर ही वह आचरण करता रहा. अब वह सिर्फ अपने पर तालियां ही बजा सकता था.

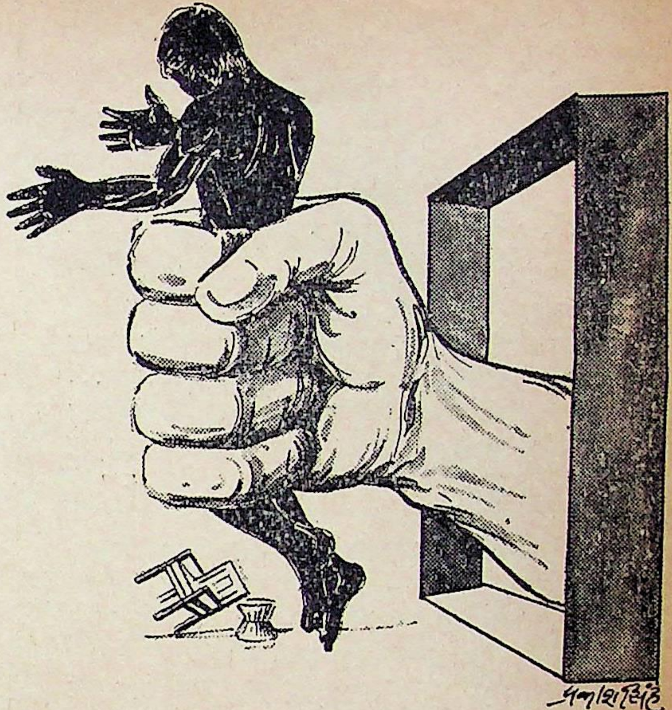

सिंधी कहानी

तालियां

• आनंद खेमाणी

ज़रा आगे बढ़कर वह रुक गया. पहले सामने की ओर ताकता रहा, फिर पीछे मुड़कर देखने लगा.

जब उसकी गर्दन दुखने लगी तो वह चीख उठा और सामने की ओर देखने लगा. पर लगातार ज्यादा देर टकटकी लगाये नहीं रह सका. उसकी आंखें चुंधिया गयी थीं. अतः दिन के प्रकाश में, अधिक समय तक खुली आंखें उसे असह्य पीड़ा देती थीं.

उसकी रगों में से खून लगभग सूख चुका था. फिर भी वह चलता ही रहता है, मानों चलते रहना रक्तहीनता की स्थिति में ही संभव है. उसके कान भी कम सुनते हैं. उसे अपने नाम की भी जानकारी नहीं है क्योंकि एक लंबे अरसे से उसे किसी ने उसके व्यक्तिगत नाम से पुकारा ही नहीं है. 'ए' 'ओ' 'हुश' कुछ ऐसी ध्वनियां हैं, जिनके कान अभ्यस्त हो गये हैं और ऐसी आवाजें सुनने पर कतिपय संदेह से वह चौकस हो जाता है.

कभी-कभी वह हंसता भी है. केवल तब पता लगता है कि उसके कितने दांत टूट-फूट चुके हैं.

उन्नीस सौ चवालीस में उसका जन्म एक मशहूर शहर में हुआ था. पर वह अपने लिए कोई प्रसिद्धि अर्जित नहीं कर सका. इसका एक कारण यह भी है कि उसने अब तक ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे देश का नाम रोशन हो या डूबे.

पालने में ही स्पष्ट था कि वह शिशु कुछ 'विशेष' नहीं कर पायेगा. उसने कभी रोकर खाना नहीं मांगा था और वह मां की लोरी सुनकर कभी खुश नहीं हो सका था. अगर वह जरा पहले पैदा होता तो संभवतः अलग तरह का आदमी होता. उस हालत में वह फौज में शामिल होता. उसे यह विचार इसलिए सूझा क्योंकि उसके पिता का पहला पुत्र फौज में चला गया था. वह इंग्लैंड के लिए शहीद हो गया था. उसके बलिदान पर हिंदुस्तानियों को बहुत अधिक गर्व हुआ था!

वह अधिक शिक्षा ग्रहण भी नहीं कर पाया. पर जब वह स्कूल का विद्यार्थी था तो उसे महत्वपूर्ण शिक्षाएं दी गयीं. उदाहरण के तौर पर—जीवन सत्य पर चलकर बिताना चाहिए और किसी के साथ भी धोखाधड़ी नहीं करनी चाहिए...

उसने इन शिक्षाओं को शब्दशः सही समझ लिया और वह इन पर अमल करने लगा.

बहुत बाद में, जब ऐसा करना उसकी आदत बन गयी तो समाज ने उसे इनके विरीत शिक्षाएं दीं. उदाहरणतः, आजकल सच का रास्ता अपनाना सही नहीं है.

पर अब उसकी सीखने की उम्र गुजर चुकी थी. उसने बिना प्यार के शादी की, क्योंकि उसके बाप ने भी अपने बाप की पसंद को अपनी पसंद माना था.

विवाह के बाद वह सुखमय जीवन बिता नहीं सका. उसकी एक छोटी-सी नौकरी थी, वह भी उससे छिन गयी.

उसकी पत्नी ने पूछा था, "अब मुझे खाना कौन देगा?"

उसने उत्तर दिया था, "मेरा बाप!"

"क्या तुम मर चुके हो?"

"दूसरी नौकरी की तलाश में हूं."

"तुम मजदूरी नहीं कर सकते?"

"मेरे बाप की इज्जत खराब होगी."

"तुम्हारे बाप की इज्जत ही कितनी है?"

"थोड़ी-सी."

"तो?"

"मैं नहीं चाहता कि वह भी खराब हो."

पर उसे दूसरी नौकरी मिल नहीं पायी. उसने हर जगह यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

चमत्कार

□ यज्ञ शर्मा

बिजली जैसी चमक थी उसके शरीर में. तने हुए उस इस्पाती शरीर पर नजर नहीं ठहरती थी. अपने आप पर, अपनी धार पर उसे बड़ा गर्व था. वह चाकू था.

गजब की फुर्ती से वह उठता था. छपाक से नीचे गिरता था. सपासप सब कुछ काट डालता था. खप्... खप्... कटते हुए मांस व चिर्र... चिर्र... चिरती हुई खाल की ध्वनि उसे बड़ी अच्छी लगती थी. अलग-अलग तरह की चीजें काटने में उसे बड़ा आनंद आता था. लेकिन खरबूजों पर गिरना उसका प्रिय शौक था. कभी वह उनकी खाल उतार लेता था, कभी केवल नसें काटकर छोड़ देता था, कभी गोल-गोल टुकड़े ऐसे काटता था जैसे खरबूजे का नमूना देख रहा हो. किंतु उसकी सबसे प्रिय विधि वह थी जिसमें वह लंबी छलांग लगाकर खरबूजों पर गिरता था तथा बहुत से खरबूजों को एक साथ धराशायी कर देता था. इस विधि को खरबूजे खोमीनी विधि कहते थे.

एक बार उसका मन खरबूजा काटते-काटते ऊब गया तो वह सपरिवार छुट्टी मनाने कश्मीर चला गया. खरबूजों ने चैन की सांस ली और सोचा कि शायद अब वह अपना यह भयंकर शौक छोड़ दे. लेकिन कुछ दिन छुट्टी मनाने के बाद जब वह फिर एक खरबूजे पर गिरने को तैयार हुआ तो खरबूजा बोला, "यार, दुनिया बदल गयी, पर तुम नहीं बदले. निरे चाकू ही रहे. अरे तुम मुझ पर गिरो या मैं तुम पर, बात तो एक ही है. यह तुम समझ क्यों नहीं रहे हो. सदा से तुम मेरे ऊपर गिरते आ रहे हो. मनोरंजन के लिए विविधता बहुत आवश्यक है. ऐसा करो, तुम मेरे ऊपर मत गिरो, मुझे अपने ऊपर गिरने दो."

चाकू ने सोचा... हर्ज क्या है! नुकसान तो खरबूजे का ही होना है. फिर जब बहुत से खरबूजे अपने आप कटने लगेंगे तो मैं इसे धार्मिक क्रिया घोषित कर दूंगा. चाकुओं के लिए खरबूजा काटने के नये-नये आसन इजाद करूंगा. यदि ये आसन लोकप्रिय हो गये तो हो सकता है इन्हें एक नये धर्म का नाम दिया जा सके. इस नये धर्म का प्रवर्तक मैं होऊंगा.

भावी धर्म का प्रवर्तक तनकर बोला, "लोकतांत्रिक पद्धति में मेरा अटल विश्वास है. भाई खरबूजे, तुम्हारी इच्छा ही सर्वोपरि है. यदि मेरे ऊपर गिरने में तुम्हें खुशी मिलती है तो खुशी से गिरो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है."

खरबूजा ऊपर उठा. चाकू तनकर खड़ा हो गया. खरबूजा और ऊपर उठा और बहुत ऊपर उठकर हवा में टंग गया. वह फिर कभी नीचे नहीं उतरा. चाकू नीचे तना ही रह गया. खरबूजे ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को लात मार दी थी. □

बताया कि उसकी पहली नौकरी इसलिए छिन गयी क्योंकि कोई भी काम ठीक तरह से कर नहीं सकता है.

उसकी पत्नी ने उससे पूछा था, "क्या तुम चोरी कर सकते हो?"

"मुझमें इतना साहस नहीं है."

"तुम आत्महत्या भी नहीं कर सकते?"

"यह महापाप है."

"फिर तुमने विवाह ही क्यों किया?"

"मेरे पिता ने करवाया था." तब उसकी पत्नी ने अपने क[illegible] को दोष दिया था.

उसे लगा कि काफी दिनों से उसे रोटी नहीं मिली है. या क[illegible] कभी उसे कोई एक-आध रोटी दे जाता है.

उसने धीरे-धीरे चलना शुरू किया. शहर के सब मार्गों त[illegible] गलियों में से उसका जुलूस निकला करता था. आगे-आगे [illegible] होता था, पीछे-पीछे शहर के नादान तथा शैतान छोकरे [illegible] करते थे.

एक अस्पताल में फौजियों के लिए रक्तदान करने का प्रस्ता[illegible] रखा. लेकिन डाक्टरों ने उसे एहसास करवाया कि रक्त की उ[illegible] स्वयं सख्त जरूरत थी. उसे विश्वास नहीं हुआ था. वह कभी कोई काम ही नहीं करता है. फिर उसका रक्त कैसे [illegible] गया!

वह आई (आंख) बैंक में गया. पर उसे डाक्टरों ने बता[illegible] कि वे किसी जीवित व्यक्ति की आंखें नहीं निकाल स[illegible] क्योंकि कानून में इसकी व्यवस्था नहीं है.

पीछे से किसी ने उसे आवाज दी, "ए!"

वह रुक गया.

अजनबी ने उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में सस्नेह ले लिय[illegible] वह अपनत्व में मुस्करा पड़ा. अजनबी ने पूछा, "चलोगे?"

"कहां?"

"दो रुपये मिलेंगे."

"किस लिए?"

"तालियां बजाने तथा नारे लगाने के लिए."

"किस खुशी में?"

"देश के साथ वफादारी की खातिर."

"देश के साथ कौन है वफादार?"

"हमारा नेता."

"आपका नेता कौन है?"

"वह जिसके नारे लगने हैं."

"रुपये कौन देगा?"

"मैं."

"तुम कहां से दोगे?"

"वही नेता देगा."

"वह कहां से लायेगा?."

"तुम्हें चलना नहीं है, बस सवाल करना है! तुम हो बेवकूफ[illegible]"

वह समझ नहीं पाया. उसे हर एक ने यह कहा था कि वह क[illegible] भी चीज समझने के योग्य नहीं है. उसने इसी बात पर ताल[illegible] बजायीं. अकेले, अकेले.

● बी-ए-1/47 बी, जनकपुरी, नयी दिल्ली–58

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

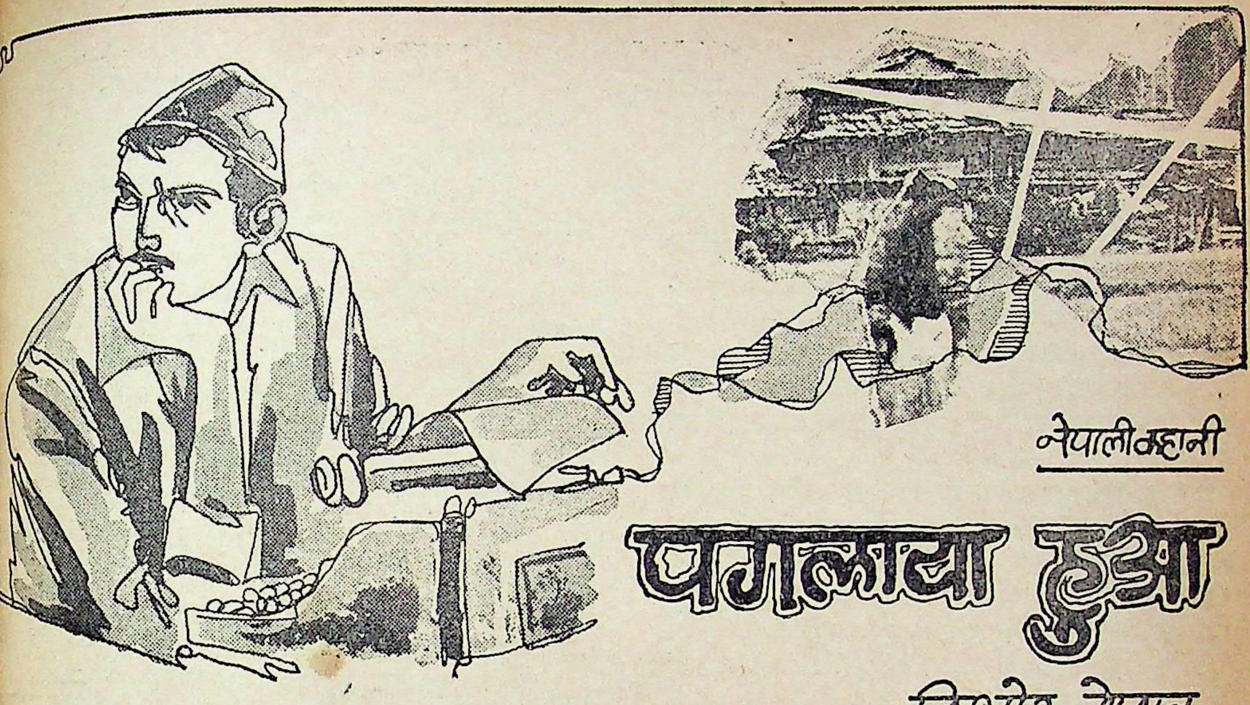

नेपाली कहानी

पगलाया हुआ

• किशोर नेपाल

अस्सी दिन निकल चुके हैं, अस्सी दिन. वह देखता है. इन अस्सी दिनों के बीत जाने पर भी कुछ नहीं हुआ है. बड़ी अम्मा की बीमारी न बढ़ी है न घटी है. हां, कराहना कुछ बढ़ा है. एक-आध गिलास हॉर्लिक्स पी लेती हैं और कभी-कभी कराहना छोड़कर कुछ फलों की भी मांग कर बैठती हैं. लेकिन अब उस पर इस मांग का कुछ असर नहीं होता है. हां, मगर जब बड़ी अम्मा पहली बार बीमार हुई थीं, उनकी सेवा में वह जुट पड़ा था. कसाई दिल अफसर से गिड़गिड़ाकर कुछ रुपये पेशगी तनख्वाह भी ले आया था. लेकिन अब उसके लिए कुछ भी करना संभव नहीं है. उधार के बोझ से वह इतना दब चुका है कि अब और ज्यादा दबना मुमकिन नहीं है. इसीलिए आज सुबह जब बीवी ने ओझा के यहां जाने के लिए पांच रुपये मांगे थे तो उसने एकदम दुत्कारते हुए कहा था, "मुझे न तो इन ओझाओं में ही विश्वास है न मेरे पास रुपये ही हैं."

पड़ोस की मालती दीदी से उधार लेकर बीवी उस कथित प्रसिद्ध ओझा के यहां गयी थी, उसे यह बाद में पता चला था. ओझा के यहां से लौटकर वह बता रही थी, "बड़ी अम्मा को अभी कुछ नहीं होगा और मुझे भी भूत-प्रेत नहीं लगा है, सिर्फ कमजोरी है." उसे यह पहले ही पता था, उसकी बीवी एनीमिक है. यह उसके सूखे, रक्तहीन चेहरे को देखकर कोई भी बता सकता था.

काठमांडू में घर होना एक खुशहाली की बात है. लेकिन जब वह घर नाम मात्र का हो और उसमें गुजर-बसर अपने को किसी भट्ठी में झोंक देने-सा हो, तब उसके होने न होने का कोई अर्थ नहीं होता है. तीन कमरे के इस घर के निचले वाले कमरे में उसने अपने लिए एक खाट डाल ली थी. बड़ी अम्मा के बीमार होते ही उन्हें वहीं लिटाना पड़ा. क्योंकि उसकी हिंदू बड़ी अम्मा घर के ऊपरी मंजिल में मरना नहीं चाहतीं. उनको लेकर वह काफी तंग आ चुका है. निन्यानवे बरस की उमर में भी जीवन के प्रति जितनी आसक्ति उनमें है, वह अपने-आप में आश्चर्य की बात है. लेकिन मरती नहीं, तो इसमें बड़ी अम्मा का भी क्या दोष! बीमारी के शुरू के दिनों में वह जब बड़ी अम्मा के पास जाता था, तो वह पीड़ा से कराहते हुए अक्सर कहा करती थीं, "मुझे थोड़ा-सा विष दे दो."

इस तरह अस्सी दिन से वह स्टोर-रूम में सो रहा है. वैसे भी वह बीवी-बच्चों के साथ सो नहीं सकता. मच्छरदानी घर भर में सिर्फ दो हैं, एक बड़ी अम्मा को चाहिए और दूसरी बीवी-बच्चों को. इसलिए वह मच्छर भगाने की चीनियां धूप जलाकर सोने की कोशिश करता है. लेकिन रातभर उसे नींद नहीं आती है और सुबह होते ही बच्चों की चिल्लाहट से भी नींद उचट जाती है. फिर वह निश्चल होकर बिस्तर पर पड़ा रहता है. दस बजते हैं तो दो कौर भात निगलकर ऑफिस की ओर चल देता है.

▣

"उफ् क्या गर्मी है!" ऑफिस पहुंचते ही वह पानी मांगता है. कुर्सी पर निढाल-सा होकर थोड़ी देर सुस्ताता है. अभी वह सुस्ता ही रहा होता—इंटरकॉम अपनी कर्कश आवाज में चिल्लाने लगता है. "हैलो, हां आदित्य ही बोल रहा हूं. यस सर, क्या लिखना होगा! यस सर, अंडरस्टैंड, ओ.के. सर! ओह नो सर!"

उसे हंसी आती है. ये ऊपरवाले अफसर लोग कितने दिन ऐसे ही झूठ बोलेंगे! अभी साहब ने उसे स्थिर मूल्य स्थिति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

अपना पहाड़ा

□ डॉ. कुंअर बेचैन

शहर से दूर एक छोटे-से गांव में ब्याज पर रुपया उधार देने वाला महाजन बूढ़े अनपढ़ श्यामू को हिसाब समझा रहा है, "पच्चीस चौका एक सौ पचास. और इस तरह चार महीने के एक सौ पचास ब्याज के हुए. मगर तू गरीब आदमी है. चल तुझे पच्चीस छोड़े. अब एक सौ पच्चीस रुपये ब्याज के और एक सौ असल. कुल दो सौ पच्चीस हुए. ला निकाल और मेरे बहीखाते से अपना नाम कटवा!"

श्यामू भौंचक्का-सा देख रहा है. इतने रुपये उसकी जेब में हैं ही कहां. पहले उंगलियों पर हिसाब लगाकर, फिर ईंट के टुकड़े से धरती पर लाइनें खींचकर सही-सही हिसाब का विश्वास करते हुए श्यामू बोलता है, "मगर हुजूर, पच्चीस-पच्चीस चार जगह रखकर तो पूरा सैकड़ा होता है और आपके हिसाब से पचास ऊपर सौ बैठते हैं. आपका पहाड़ा गलत है हुजूर!"

"वह तेरा पहाड़ा होगा. यह महाजनी पहाड़ा है गधे! देखा है कभी! ले देख!" और ऐसा कहते हुए महाजन ने अनपढ़ श्यामू के सामने बहीखाता रख दिया.

श्यामू की भौहें तन जाती हैं, वह भी अपना अलग पहाड़ा बनाने के सोच में उठकर चल देता है. □

नेपाली बाजार व्यवस्था पर एक वर्किंग पेपर लिखने को कहा है. 'आंकड़ा भर दो'—बोलते हैं. लेकिन क्या यह यथार्थ होगा! न हो, उसे क्या? वैसे भी इन ऊंचे वेतनवालों को मूल्य स्थिति से क्या लेना-देना! अभी पिछले दिन एक समाचारपत्र का संवाददाता बोल रहा था कि चावल के भाव में शत-प्रतिशत वृद्धि हुई है. यह किससे छिपा है. वह खुद भी तो यह जानता है, लेकिन इस सत्य को साहब के वर्किंग पेपर में नहीं आना है. सत्य, सत्य ही होता है. इसलिए गढ़े गये इस झूठ को सत्य साबित करने के लिए सम्मेलन का आयोजन करना पड़ता है. वह कागज-कलम संभालकर लिखने बैठता है—'उपस्थित सज्जनों और महिलावृंद—हमारे यहां गत पांच वर्ष मूल्य की दृष्टि से उपभोक्ताओं के लिए...' टेलीफोन बज उठता है.

"हां, बोल रहा हूं? क्या हुआ?? बोलती बंद हुई? हां, अभी आया."

वह टेलीफोन क्रेडिल पर रखकर थोड़ा-सा मुस्कराता है. लगता है, उसके अंदर अभी-अभी एक क्षीण मुस्कान और क्षीण खुशी ने जन्म लिया है. वह साहब के कमरे में जाता है.

"सो तो ठीक है, लेकिन वर्किंग पेपर का क्या होगा मिस्टर आदित्य?"

"मैं तैयार कर लूंगा सर. कल सुबह आपके घर में दे जाऊंगा आप चेक कर लेना."

"ओह नो आदित्य, अगर बुढ़िया मर ही गयी तो?"

"शेखर को कहूं सर?"

"ओह नो! ही कांट राइट माइ ब्वॉय."

"तो फिर सर, मेरा वहां जाना कितना जरूरी है, यह अंदाजा तो आपने लगा ही लिया होगा."

"वो तो है. पर माइ ब्वॉय, तुम ऐसा करो, किसी पियन को घर भेज दो. तुम्हें टाइम ही क्या लगेगा? आइ थिंक, यू विल कंपलीट इट विदिन टू आवर्स. इट इज अ क्वेश्चन ऑफ प्रेस्टिज आदित्य."

वह अपने स्थान पर लौटता है और लिखने लगता है—'हाल में जो मूल्य वृद्धि हुई है, इसे अगर हम पर कैपिटा इनकम के साथ मिलाकर देखें तो हमें यह पता चल जायेगा कि यह वृद्धि कुछ भी नहीं है...'

राममान आता है और कॉफी उसके आगे रखकर बोलता है, "साहब ने भेजा है." वह कॉफी पीकर फिर लिखने लगता है. लगभग एक बजे वह वर्किंग पेपर का प्रिलिम्नरी ड्राफ्ट तैयार करके टाइपिस्ट को देता है और चल पड़ता है.

घर आकर देखता है, बड़ी अम्मा स्थिर हैं. लेकिन अभी यह बुढ़िया मरेगी नहीं. उसे लगता है कि दुःख तो अब प्रारंभ हुआ है, खत्म नहीं. वह डॉक्टर बुलाने जाता है. स्थानीय अस्पताल का बूढ़ा डॉक्टर आकर जांचता है. बताता है—'पैरालिसिस है अस्पताल ले जाओ.'

"लेकिन डॉक्टर साहब, अस्पताल ले जाना तो मुश्किल है वैसे भी आप तो जानते ही हैं." उसे लगता है कि निन्यानवे बरस की इस बुढ़िया को अस्पताल क्या बचा पायेगा!

"तो फिर कुछ इंजेक्शन लिख देता हूं. यह मिक्श्चर पिला देना और सैलाइन वाटर देने की भी जरूरत है. स्टैंड मेरे यहां से ले आना."

वह डॉक्टर का प्रेस्क्रिप्शन लेकर ऑफिस की ओर चल पड़ता है. इस माह के वेतन से उसे अब पेशगी नहीं मिलेगी. वह प्राविडेंट फंड से रुपये निकालने के लिए निवेदन लिखता है. शायद साहब को वर्किंग पेपर पसंद आ गया है. इसीलिए बिना किसी रुकावट निवेदन पास हो जाता है. आर्थिक-शाखा से निकलकर वह डॉक्टर के यहां पहुंचता है.

वह सोचता है इन अस्सी दिनों में कितना टूट चुका है, वह कुछ भी करने में असमर्थ है. योगेश ने उसे कुछ काम दिया था, लेकिन जब आदमी अंदर से टूटता है तो कुछ भी न कर पाना बहुत मुश्किल है. इन अस्सी दिनों में उसकी नींद बार-बार उचटी है. कराहने की आवाज का वह अभी तक अभ्यस्त नहीं हुआ है. वह बार-बार सोचता है, बड़ी अम्मा को मर जाना चाहिए या नहीं? मृत्यु से वह डरता है, लेकिन जिस स्थिति में वह फिलहाल जी रहा है वह भी उतनी ही भयावह है. तो फिर वह क्या करे?

वह सोचता है, अगर मां आती तो उसका दुःख कम हो जाता. लेकिन मां ने खबर भेजी है, "शायद तत्काल मैं न आ पाऊंगी फिर भी खबर तुम भेजते रहो. हां, एक बात ध्यान रखना. बड़ी अम्मा की वसीयत कराकर उसे रजिस्टर्ड करा लेना. उसे लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, यह तो ठीक है. लेकिन वह बड़ी अम्मा से कैसे कहे कि बड़ी अम्मा तुम मर रही हो और मरने से पहले इस वसीयत में सही कर देना.

सिर्फ कराह ही सुन रहा है वह. एक महीना तो बीत गया होगा, जबसे वह बड़ी अम्मा के पास नहीं गया है. जाये भी तो कैसे! होश में होंगी तो कहेंगी, मुझे विष दो, और बेहोश होंगी तो बाप को, दादा-परदादा को, भाइयों को गालियां देंगी. गाली भी ऐसे चुन-चुनकर देती हैं. . .इतनी भद्दी कि तत्क्षण उसे लगता है, बुढ़िया को विष देना ही होगा. लेकिन क्या बुढ़िया यह खा पायेगी? विष? इस तरह की कल्पना से भी वह डरने लगता है. वह कमजोर मनःस्थिति में फिर सोचने लगता है—बीमार है तो इसमें बड़ी का क्या दोष है? बेचारी दुःख भोग रही है. "पूर्व जन्म में मैंने ढेर-सा पाप किया था, सो उसी का फल भोग रही हूं." बड़ी कभी-कभी तुतला कर बोलती है. अब तो उसकी आवाज भी स्पष्ट नहीं है.

सच तो यह है कि वह बड़ी अम्मा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण है. उनकी कराह सुनकर वह कितनी ही बार रोया है. बड़ी के प्रति उसे विशेष लगाव इसलिए भी है कि बड़ी ने उसे बेटे से भी बढ़कर पाला-पोसा है. घर को छोड़कर बड़ी जो सुविधा उसे दे सकती थी, दी है. बड़ी से वह अभी भी स्नेह करता है, लेकिन उसे बस चिढ़ यही है कि बड़ी की बीमारी से वह विस्थापित हो गया है. घर बड़ी का है. जीवन के अंतिम दिनों में भी उसे कुछ सुविधा न मिले! वह तमाम असंतोष भूलकर फिर नये सिरे से बड़ी अम्मा के लिए सोचता है. सहानुभूतिपूर्वक सोचने के बावजूद वह बड़ी के लिए कुछ नहीं कर पायेगा. वह तंग हो चुका है. उधार और ऋण के दलदल में धंसता जा रहा है. पुरखों का संचित किया हुआ कुछ सोना-चांदी भी बेच चुका है. और अगर बड़ी उसे अपना उत्तराधिकारी न माने तो उसके पास इतनी संपत्ति भी नहीं है कि वह अपने को नेपाल का जन्मजात नागरिक सिद्ध कर सके.

"आदित्य साहब, बड़े साहब बुला रहे हैं."

वह बड़े साहब के कमरे की ओर बढ़ता है. साहब कॉफी के साथ इंपोर्टेड सिगरेट पी रहे हैं. वह जाकर बैठता है. बड़े साहब उसे सिगरेट देते हैं और कॉफी बनाकर पीने को कहते हैं. फिर बोलते हैं, "मिस्टर आदित्य, तुम्हें मेरा प्रतिनिधि बनकर जाना होगा!"

"लेकिन कहां सर!" कसाई-से अफसर का बदला हुआ स्वभाव देखकर आदित्य आश्चर्यचकित है.

"बंगलौर. वहां एक सम्मेलन हो रहा है. वहां तुम्हें मेरा प्रतिनिधित्व करना होगा. मैं स्वयं जाता, लेकिन कुछ दिनों से मैडम की तबीयत ठीक नहीं है."

"लेकिन मैं ही क्यों सर? दूसरे भी तो. . ."

"देखो आदित्य, मैं तुम्हें एक चांस दे रहा हूं. तुम हो कि इंकार कर रहे हो. इस तरह तो तुम कभी भी प्रगति न कर सकोगे. गो अहेड माइ ब्वाय. इट्स अ ग्रेट चांस फॉर योर कैरियर."

"आइ'म ग्रेटफुल टू यू सर. बट माइ फैमिली सिचुएशन डसन्ट एलाउ मी टू गो."

"देखो आदित्य, इसे तुम मेरा आदेश समझो. बाकी रहे फैमिली मैटर्स, सो इसे तुम्हें सहजता से लेना चाहिए."

"थैंक यू सर!" आदित्य बाहर निकलता है और वह शेखर के कमरे की ओर बढ़ चलता है. शेखर चुपचाप बैठा हुआ सिगरेट पी रहा है. आदित्य उसे बताता है तो वह कहता है, "देखो आदित्य, वह स्साला फ्रॉड है. न उसकी बीवी बीमार है न वह जाना ही चाहता है. उस साले को अंग्रेजी तो बिल्कुल नहीं आती. नेपाल में दूसरों का लिखा हुआ वर्किंग पेपर पढ़ना एक बात है. लेकिन वहां इंटरनेशनल डेलीगेट्स के साथ यह खूसट क्या बात कर पायेगा! साला पढ़ा-लिखा तो है नहीं, दूसरों का फेवर पाकर विशेषज्ञ बन बैठा है!

शेखर बकता ही जा रहा है. लेकिन आदित्य इस आक्रोश में शामिल नहीं हो पाता है. वह सोच रहा होता है—'अगर उसके जाने के बाद बड़ी मर गयी तो? मौत का क्या ठिकाना! फिर उसकी बीवी क्या कर पायेगी! पास-पड़ोस भी तो नानकोआपरेटिव है. उसे लगता है, वह पागल हो जायेगा. उसे अपने सिर में हजारों कीड़े रेंगते महसूस होते हैं. कुछ ही देर में राममान लेटर ऑफ रेप्रिजेंटेशन, हवाई जहाज का टिकट और रुपये दे जाता है.

तभी टेलीफोन की घंटी बज उठती है. शेखर रिसीवर उसे देता है, "योर काल."

वह बिना सुने ही टेलीफोन क्रेडिल पर पटक देता है और बड़ी अम्मा की कराह और अंतिम धड़कन को सुनने का प्रयत्न करने लगता लगता है. □

● 7।37 बत्तीशपुतली, काठमांडू (नेपाल)

आसपास बिखरी कहानियां

—अपने-अपने दायरे—

▣ अरुण ओसवाल

"तुम मुझे कप-प्लेट में चाय क्यों नहीं देते?" ग्राहक ने चीखकर होटल के मालिक से कहा.

"मैं तुम्हें कप-प्लेट में चाय हरगिज नहीं दूंगा. मुझे अच्छी तरह मालूम है, तुम जाति के चमार हो."

"लेकिन.... लेकिन यह तो संविधान की धारा 17 के अनुसार अपराध है," ग्राहक ने कानूनी तर्क दिया.

"हां, मुझे मालूम है, लेकिन कुछ भी हो, मैं कप-प्लेट में तुम्हें चाय हरगिज नहीं दूंगा.

बात बढ़ने के साथ ही होटल के चारों ओर भीड़ इकट्ठी होने लगी थी, तमाशबीनों की. इतने में एक सज्जन भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़े और ग्राहक के नजदीक पहुंचकर बोले, "मैं तुम्हें कप-प्लेट में ही चाय पिलवाऊंगा." फिर होटल वाले से कहने लगे, "भाई, एक चाय बनाकर कप-प्लेट में डालकर मुझे दो." होटल वाले ने झल्लाते हुए चाय बनायी और सज्जन के हाथों में थमा दी. उन सज्जन ने दर्शकों की भीड़ में खड़ी एक हरिजन बाला को बुलाया, "बहिन, जरा अपने हाथ का झाड़ू अलग रख हाथ धोकर इन्हें चाय का यह कप दो. हमारे ग्राहकों को कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए." ग्राहक ने सुना तो बोला, "हूं ... क्या मैं भंगी की छुई हुई चाय को पिऊंगा?" वह बगैर चाय पिये चल दिया. भीड़ छंटने लगी. ▣

● द्वारा/श्री सागरमल टेलर मास्टर, वार्ड नं. 4, भवानीमंडी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुनाथ कृपा

पृष्ठ 30 से जारी

"पता तो होगा, मुलां याद नहीं. मैं तो वहीं खड़ा था. रम्मे बाबू अपनी रील चालू किये था. मंत्री ने बीच में दो बार पानी मांगा. दोनों बार घंटा घंटा भर गिलास पकड़े बैठे रहे. मैं खड़ा रहा. अरे भाई, पानी पियो और अलग करो. पानी भी नहीं पियेंगे और गिलास भी नहीं छोड़ेंगे. पानी पीने में तो ये लोग घंटा लगाते हैं. . .और बड़े कामों में तो महीना लगाते होंगे. किसी दिन पहले से घुसकर बैठ जाऊंगा. . .तब देखूंगा, आखिर इसके और हमारे में क्या फरक है."

"तो आपको कुछ याद नहीं?"

"अरे साहब, आप भी मजे की बात करते हैं. मुझे इस धरती पर एक आदमी का भी नाम बता दो, जो अपने काम से और अपने अफसर से खुश रहता हो. काम खराब तो साब भी खराब. हमारा एस. डी. ओ. है, हमेशा गाली से बोलता है. . .मुंह में बवासीर है. मौका मिले तो हम भी कलक्टर साब से कह दें. उसने भी कहा होगा."

"तो हमारी बुराई कर रहा था?"

"बुराई की क्या बात. अपना रोना रो रहा था. उसे तकलीफ है सा'ब. रम्मे बाबू बहुत कड़ियल है, जल्दी हिम्मत नहीं हारता. अब आप कहे होंगे कि तुम जात-कुजात का हगा मूता करो, वह तो कहेगा ही. इज्जतदार आदमी तो इज्जतदार आदमी ही होगा. वह गर्दन कटवा देगा, नीचा काम नहीं करेगा. जाना है तो अफसर खुद जाये. जाकर तेल देखे, तेल की धार देखे. अपना दुःख दर्द कह रहा था."

हनुमान प्रसाद का चेहरा मुरझाता जा रहा था. पैर कांप रहे थे. वह आदमी रम्मे से भी ज्यादा भयावना लगने लगा था. उसके मुंह से निकला, "पर मंत्रीजी ने तो दस-साढ़े दस बजे बुलाया था."

"उन्होंने बुलाया था, आप आ गये, उन्हें जाना था, वे चले गये. वे मंत्री थे." फिर बोला, "आप घर जाना चाहें, घर जायें और नहीं तो सामने वाले सोफे पर पड़कर सो जायें. मुझे भी सोने दें."

वह लेट गया. हनुमान प्रसाद बिना बोले लौट पड़ा. उसका लौटना, लौटना नहीं था, जितना कि बेइज्जत होना था. मंत्री के बारे में वह क्या सोचे और क्या न सोचे, वह समझ नहीं पा रहा था. रम्मे ने उसे मंत्रीजी की नजरों में दो कौड़ी का सिद्ध कर दिया होगा. अब इस नौकरी में रहने से कोई फायदा नहीं. वह मंत्री के बारे में कुछ भी सोचकर उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता. मंत्री उसके खिलाफ जरा सा भी सोचकर उसको बरबाद कर सकता है. वह रम्मे की बात से संतुष्ट हो गया, इसलिए चला गया. अगर न हुआ होता तो रुककर उसकी बात भी सुनी होती. हनुमान प्रसाद रोने-रोने को हो आया. उसे सीढ़ियां ऊपर नीचे होती महसूस हुईं. वह समझ नहीं पा रहा था कि उनसे कैसे उबर पायेगा?

▣

रिक्शावाला पेड़ के नीचे खड़े रिक्शे पर सो रहा था. उसके पैर ऊपर और सिर नीचे को लटक रहा था. उसके उस तरह सोने से वह भयभीत हो उठा. नीचे की सीढ़ी पर खड़े ही उसने का आवाज से पुकारा, "रिक्शावाले. . .रिक्शावाले. . .रिक्शा वालेऽ. . ."

वह वैसे ही बिना जुंबिश के लेटा रहा. हनुमान प्रसाद रिक्शावाले को लेकर आकस्मिक मृत्यु का भय सवार होता उसका सोच उसी दिशा में चालू होने लगा. वह मर सकता क्यों नहीं मर सकता. मरने के लिए पहले से तैयारी की आवश्य नहीं होती. अगर वह मर गया होगा तो वह घर तक कैसे पहुं और पहुंच भी गया तो उसके मरने के बाद के प्रभावों से कैसे होगा. वे उसका पीछा रम्मे और खन्ना की तरह तब तक करते जब तक वह . . . .उसकी गर्दन जिस तरह लटकी है, उस तरह आदमी की नहीं लटक सकती. आदमी की गर्दन का संतुलन ज सा बिगड़ा, वह फौरन जग जाता है. इसकी तो लटक रही है यानी वह जिंदा नहीं है. उसने अंतिम बार जोर लगा पुकारा. वह फिर भी नहीं बोला तो उसने चुपचाप खि जाने का निर्णय लिया और दबे पांव चलने लगा. उस मौत के चक्कर में किसी तरह भी फंसना नहीं चाहता नजदीक से निकलते हुए उसने देखा. रिक्शावाला धीरे- उठता चला जा रहा था. हनुमान प्रसाद के दिमाग में सब गड्मड् हो गया. वह जिंदा है या. . .रिक्शावाला बोला, " साहब, नहीं चलना?"

"मैं इतनी देर से चिल्ला रहा हूं. . .तुम बोले क्यों नहीं

वह हंसा, "आपको रिक्शा पर बैठकर चलना था या मेरा सुनना था. चलिए, बैठिए."

हनुमान प्रसाद चुपचाप बैठ गया.

▣

रिक्शेवाले ने बीड़ी सुलगायी. बीड़ी के सुलगते ही वातावरण ए एक बदल गया. रोशनी का गुब्बारा-सा फूलकर दरख्तों तक फ गया. हनुमान प्रसाद, रिक्शा और रिक्शावाले के साथ गुब्बारे में समा गया था. फिर एकाएक वह गुब्बारा पचक ग गुब्बारा फटने के बाद सिर्फ उसकी बीड़ी का फूल घट बढ़ रहा जब राख आ जाती थी तो वह धुंधला पड़ने लगता था. वह दम कर फिर चमकाता था.

हनुमान प्रसाद अभी तक भी नार्मल नहीं हुआ था. उसके से उसी बदहवासी में निकला, "कौन भाई हो?"

बीड़ी फेंककर, गर्दन उसकी तरफ घुमाकर रिक्शावाला मु कर बोला, "हम भाई-वाई नहीं. आप लोगों की नजरों में भाई मतलब मां का जाया. जात पूछो जात."

हनुमान धीरे वे सामान्य होने लगा था. उसकी बात ने थोड़ा आहत किया था. इन लोगों से बात नहीं करनी चा फौरन औकात के बाहर चले जाते हैं. उसने अपने आपको रि वाले की तरफ से समेट लेना चाहा. वह अपनी पत्नी के बा सोचने लगा. इस संदर्भ में वह मंत्री से काफी नाराज हो इस वक्त उसको इस तरह बुलाना और फिर न मिलना ज्यादती थी. अगर कुछ हो गया तो वह किसकी मां को मां क ऊपर से यह रम्मे मंत्रीजी को उलटा सीधा भर आया होगा. साथ कितनी भलाई की, कितनी इज्जत दी. उसका यह नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भलमनसाहत की भाषा कोई नहीं समझता. भलमनसाहत! वह इस शब्द पर टिक गया. उसे अंदर ही अंदर दोहराता रहा.

▣

रिक्शावाले ने एकाएक रिक्शा रोक दिया और उतरकर एक ओर को चल दिया. थोड़ी देर तक हनुमान प्रसाद समझ नहीं पाया कि यह क्या हुआ? अंधेरा इतना गहरा था कि वह न देख पा रहा था और न समझ ही पा रहा था. पेड़ चलकर अपनी ओर को ही आते दिखाई पड़ रहे थे. उसकी नजर में वे सब चलते-फिरते खूंखार आदमी बन गये थे, जो उसका गला कभी भी दबा सकते थे. रिक्शेवाले के बारे में जितना विश्वास जमा किया था, वह सब धीरे-धीरे पिघलता-सा जा रहा था. वह स्वयं भी कातिल और चोर हो सकता है, नहीं तो एकाएक इस तरह रिक्शा रोककर बिना कहे गायब होने की क्या तुक है. उसने रिक्शा की गद्दी पर हाथ रखा, फिर सोचा, अगर जरूरत पड़ी तो क्या वह रिक्शा चलाकर नहीं ले जा सकता. उसने साइकिल चलायी है. रिक्शा और साइकिल में बहुत भारी अंतर तो नहीं ही होता. कोई देख ले तो? रम्मे ही मिल जाये. शहर में गाता फिरेगा कि साब रात को रिक्शा चलाता है. न भी कोई देखे, पतलून ही चेन में आ जाये? आजकल कपड़ा बनवाना कितना मुश्किल है. नयी की नयी पतलून! हनुमान प्रसाद परेशान हो उठा. रम्मे बाबू जब जानेगा कि मिनिस्टर से मिलने गया और मिनिस्टर नहीं मिला तो तरह-तरह की कहानियां बनाकर प्रचारित करेगा. सर्किट हाउस वाला आदमी उसके बारे में किस तरह की बातें कर रहा था. जैसे रम्मे ही अकेला ऐसा आदमी हो, जिसे आदमी कहा जा सकता है. वह अपने आप में एक चलती रकम है. गुड़ खिलाकर मार सकता है. ऊंची जाति का बताकर काम से बचता है और पिछड़ी जात का कहकर उसमें मिलता है.

▣

हनुमान प्रसाद अंधेरे को और गहरा होता हुआ महसूस करने लगा. शादी हुए कितने दिन हुए, सिर्फ छः मास. कहीं छः माह में ही इस दांपत्य जीवन का अंत तो नहीं होने जा रहा? वह निराश हो उठा और उसके सामने पत्नी का चेहरा घूमने लगा. उसने कसकर आंख बंद कर ली, पर वह न तो चेहरे से मुक्ति पा सका और न उस विचार से.

पेड़ों के झुरमुट के पीछे से परछायीं की तरह रिक्शावाला निकलता दिखायी पड़ा. उसके पीछे-पीछे उसे लगा, एक-दो आदमी और भी आ रहे हैं. आगे आया तो वह अकेला था. आदमी छूट गये थे. हनुमान प्रसाद ने सोचा, हो सकता है, वे लोग इधर-उधर हट गये हों और पीछे की तरफ से आकर उसका गला दबा दें. उसने रिक्शावाले से बात करनी चाही, पर आवाज नहीं निकली. रिक्शावाला बिना बोले गद्दी पर बैठकर चल दिया. हनुमान प्रसाद को थोड़ा-सा सकून मिला, पर वह इस भय से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पा रहा था कि वह उसे कातिलों के सुपुर्द करके उनसे पैसे वसूल कर लेगा. वह साथ ही साथ अपने-आपको समझाने की कोशिश भी करता जा रहा था कि अगर ये लोग ऐसा करेंगे तो कौन उनकी सवारी में बैठेगा. लोग तो आंख बंद करके बैठ जाते हैं

उन ने कहा था

मैं उर्दू के लिए हिंदी लिपि (देवनागरी—सं.) चाहती हूं और इस पर उर्दू वाले मुझसे खफा हैं.

▣ इस्मत चुगताई (पुनश्च–5)

आदमी जिन छोटी-बड़ी, अच्छी-बुरी, सुंदर-कुरूप परिस्थितियों से घिरा है, उनके भीतर से गुजरने के अलावा और क्या कर सकता है.

▣ नित्यानंद तिवारी

मैं उस अर्थ में मार्क्सवादी रहा नहीं, जिस अर्थ में मेरे प्रगतिशील दोस्त रहे हैं, मसलन चौहान और राजीव सक्सेना. मुझे पार्टी के लोगों ने उस रूप में कभी गंभीरता से नहीं लिया.

▣ शमशेरबहादुर सिंह

जीवन से जड़ता निकाल फेंकना उतना ही जरूरी है, जितना रसोई से तिलचट्टे निकाल फेंकना.

▣ ममता कालिया

कि हमें हमारी मंजिल तक पहुंचा देगा.

रिक्शावाला एकाएक बोला, "हम आपको अच्छी तरह पहचानते हैं."

पहले तो हनुमान प्रसाद की समझ में नहीं आया कि वह किससे कह रहा है. समझ में आया तो वह और ज्यादा घबरा गया. इस तरह से कहने का मतलब क्या है? अगर यही बात मंत्रीजी ने कही होती तो शायद उसके लिए उत्साहवर्धक सिद्ध हुई होती. मिनिस्टर का जानना रिक्शावाले के जानने से एकदम भिन्न है. खासतौर से जब रिक्शावाला ऐसी बात आधी रात के करीब किसी बियाबान जंगल में अचानक कह दे.

▣

उसने फिर कहा, "हम आपके रम्मे बाबू को भी जानते हैं, जो आपका मुंह है."

रम्मे बाबू को हनुमान प्रसाद काफी देर से भूला हुआ था. वह एकदम से उभर आया, लेकिन वह उसका आखिरी वाक्य नहीं समझ पाया था. वह मेरा मुंह कैसे हो सकता है, मौत भले ही हो. उसने लंबी-सी सांस लेकर दोहराया, "रम्मे बाबू."

रिक्शावाला हंसा. फिर बोला, "आपने पूछा नहीं, कैसे जानते हैं? बड़े आदमियों को छोटे आदमियों से बोलने में तकलीफ होती है. है ना?"

हनुमान प्रसाद रिक्शावाले की बातों का सिर-पैर समझ नहीं पा रहा था. उसने अपनी बात चालू रखी, "आप लोग जानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि इन साले गरीब आदमियों का पेट हांडी होता है, जरा-सी गर्मी मिली और अंदर का सब कुछ उबलकर बाहर. चुप हम भी रहना जानते हैं, पर इतना नहीं, जितना आप लोग. न बोलना आप लोगों को बड़ा बनाता है और बोलना हम लोगों को छोटा, पर कब तक?" हनुमान प्रसाद उसके सवाल करने के तरीके से एकाएक चौंक गये.

हनुमान प्रसाद उसकी बातों का जवाब देना चाहते थे, पर उन्हें सूझ नहीं रहा था. जिस तरह की बातें रिक्शावाला कर रहा था, वे सब उनको उथल-पुथल अधिक कर रही थीं. वे या तो उसे मुंहतोड़ जवाब देना चाहते थे, या उतर जाना. दोनों बातें उन्हें काफी देर तक संभव नजर नहीं आयीं.

रिक्शावाला फिर बोला, "एक दिन रम्मे बाबू का हमने गला पकड़ लिया तो वह बोला, "भाई, हमें तो ऊपर वालों को भी खुश करना पड़ता है. अकेले हमारा ही पेट बड़ा थोड़े ही है."

हनुमान प्रसाद बड़ी मुश्किल से पूछ पाया, "तुम उतरकर कहां चले गये थे?"

"हाजत-फराखत के लिए भी नहीं जा सकते क्या? यही तो जोर-जबरदस्ती है आप लोगों की. आप लोगों का तो हगा-मूता भी करें और अपना. . .हत्त तेरी साली गुलामी की."

हनुमान प्रसाद को पछतावा होने लगा. उसने उससे बात शुरू ही क्यों की. रिक्शावाला, खन्ना, रम्मे सब के सब उसे एक तरह से मुंह बाये खड़े नजर आने लगे. रम्मे ने उसका नाम लिया . . . .क्यों लिया? क्या मैं ही 'वह' ऊपर वाला हूं. मैंने उससे कब मांगा. . .वह मेरा मुंह है! उसने गर्दन उठाकर देखा. . .घर कितनी दूर है! पैदल पच्चीस मिनट लगते. दोनों साइडों पर घरों की रोशनियां ज्यादातर बंद थीं. कांच तक अंधे पड़े थे. उसे फिर रिक्शावाले की बात का ध्यान आया. वह मनभना उठा, "क्या मैं इन लोगों का हिस्सा बाटूंगा. . . ? लानत है मुझ पर और लानत है इन सब पर."

रिक्शावाला फिर चालू हो गया, "मेरा नाम रामहरख, बाप का नाम दुक्खी. दुक्खी नाम से आप शहरवालों को क्या मतलब. जैसा रामहरख, वैसा दुक्खी." कहकर वह हंसा. फिर बोला, "मुझे तो सबका एक ही नाम लगता है बाबू. . .दुक्खी! सुक्खी हमारा चाचा था. अच्छा खाता पीता. बापू उससे कहता था, अरे सुक्खू, तुझे अपना नाम गाली-सा नहीं लगता, वह चाहे कितना खाता पीता, बापू के सामने चुप लगा जाता था. वैसे कमजोर पड़ता था."

रिक्शावाले ने चाल तेज कर दी. हनुमान प्रसाद को हिचकोले लगने लगे. आंतें कूं-कूं करने लगीं. आखिर यह अपना, अपने बाप का, अपने चाचा का परिचय मुझसे क्यों कराये जा रहा है. क्या वह सब सवारियों से ही इस तरह की बातें करता है या मुझसे ही कर रहा है. रम्मे बाबू का गला पकड़ने वाली बात उस पर हावी होने लगी.

रिक्शावाला बोला, "बाबू, धन की सुरच्छा के लिए दो बंदूकची खड़े कर लो, पर इज्जत की सुरच्छा खुद करनी पड़ती है. गरीब आदमी के पास इज्जत ही है. इज्जत भी क्या किसी की दी हुई थोड़ा ही, अपनी समझी हुई. ये दफ्तर वाले सरकार से आया पैसा दें या न दें, पर हमारी अपनी समझी-जानी इज्जत भी छीन लें. . . .यह बात नहीं चलेगी." वह रिक्शा चलाता-चलाता गर्दन हिलाने लगा. फिर उत्तेजित हो गया, "बंदूक से सरीर मार कर गिरा दोगे, गिरा दो? पर रिक्शावाले की इज्जत नहीं ले जा सकते! वो कहता, हम नीच हैं. . .अरे नीच होना ही हमारी इज्जत है."

हनुमान प्रसाद की नजर एकाएक उठी. वही गली थी, जहां उसका घर था और बहुत देर से वह वहां पहुंचने की कोशिश कर रहा था. वह बोला, "रुको."

रिक्शावाला रुक गया. उसकी आंख में अभी तैश बाकी था. बाकी क्या था, बहते पानी को रोक देने वाली उथल-पुथल थी. उतरकर बोला, "घर आ गया. . .हमारी बात नहीं सुनी."

हनुमान प्रसाद अपने घर की तरफ देखने लगा. बाहर अंधेरा था. वह झटपट घर में घुस जाना चाहता था. उसने जल्दी-जल्दी पैसे निकाले और रिक्शावाले को दे दिये. उसने पांच रुपये गिने और आश्चर्य से बोला, "पूरे पांच!" फिर हंस दिया.

हनुमान प्रसाद सीढ़ी चढ़ने लगा तो वह बोला, "हमारी बात अधूरी रह गयी. रामहरख और दुक्खी में कोई फरक नहीं. किसी दिन दफ्तर में ही आ के सुनायेंगे."

हनुमान प्रसाद एक मिनट को ठिठका, फिर जाकर दरवाजा खटखटाने लगा. कुछ देर खटखटाने के बाद बोला, "खोलो. . . हम हैं."

रिक्शावाला सड़क पर खड़ा बीड़ी सुलगाता-सुलगाता हंसा, फिर थूक दिया और बड़बड़ाया, "धत्त तेरी रघुनाथ किरपा की ऐसी की तैसी मारूं."

● आई. आई. टी कैंपस, आई. आई. टी. कानपुर.

एक गज़ल

▣ शबाब मेरठी

दिन में पैरों को तोड़ लेते हैं,
रात आते ही जोड़ लेते हैं.

जब अंधेरों में कुछ नहीं होता,
अपने पंजे मरोड़ लेते हैं.

भूख बरदाश्त जब नहीं होती,
अपनी हड्डी चिंचोड़ लेते हैं.

ज़ुल्म होता है जब कभी हम पर,
हम मुक़द्दर से जोड़ लेते हैं.

मेरी मेहनत खरीदने वाले,
मेरे बाज़ू निचोड़ लेते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंगा : तीन घटनाकथाएं

■ संतोष तिवारी

नंदनजी,

ताजा अंक में 'जानवर और जानवर' (दूसरी किस्त) पढ़ा. उसमें सांप्रदायिक हिंसा के असली कारणों की शिनाख्त करने तथा उनका स्थायी हल ढूंढ़ने पर जोर देने की 'जेनुइन' कोशिश के लिए साधुवाद. इस संदर्भ में मुझे हाल ही में इंका के एक मुस्लिम विधायक से हुई बातचीत याद आ रही है. मुरादाबाद के दंगों के बारे में मैंने उनसे सवाल किया था, जिसके जवाब में वे उल्टे मुझी से सवाल कर बैठे थे, "आप बताइए, ये दंगे गांवों में क्यों नहीं होते? आखिर वहां ऐसा क्या है, जो इन्हें वहां संपन्न नहीं होने देता? क्या वहां मुसलमान नहीं हैं? क्या वहां हिंदुओं-मुसलमानों के रीति-रिवाजों में यह फर्क नहीं है?" मेरे पास इसके सिवा कोई जवाब नहीं था कि गांवों में दंगे इसलिए नहीं होते, क्योंकि वे गांव हैं, शहर नहीं हैं और शहरों में दंगे क्यों होते हैं, इस बारे में मेरी राय वही थी, जो 'ज़रिया नज़रिया' में आपकी है.

पिछले हफ्ते ही मुरादाबाद और अलीगढ़ घूमकर लौटा हूं. संवेदना के स्तर पर कुछ चीजें बेहद प्रभावित कर गयीं, उनका ब्यौरा घटनाकथाओं के रूप में आपको भेज रहा हूं —लेखक

पहचान

दंगाइयों की भीड़ ने आठ-नौ बरस के एक भागते हुए लड़के को रोक लिया. उसके दोनों हाथों में दो नुकीले पत्थर थे और उसका चेहरा आवेश से तर-ब-तर था.

"कहां जा रहा है?" भीड़ में से एक ने कहा.

"उधर." लड़के ने एक हाथ उठाकर इशारा किया, "वहां बशीर चाचा ने मेरे पिता को मार डाला."

भीड़ में कुछ खुसुर-फुसुर हुई और एक आवाज गरजी, "हमारे साथ आ जाओ, हम भी उधर चल रहे हैं."

"पर मैं तो बशीर चाचा को मारूंगा." लड़के ने गुस्से में कहा और अपना एक हाथ मुक्के की मुद्रा में लहराया.

"...और हमें मुसलमान मारने हैं. बशीर भी तो एक मुसलमान है." भीड़ में से किसी समझदार ने कहा.

लड़का अंततः उनकी बात समझ गया और भीड़ के साथ हो लिया. उसके लक्ष्य में फर्क नहीं आया था, पर अब उसे अपने पिता के हत्यारे बशीर चाचा को नहीं, बल्कि एक मुसलमान बशीर को मारना था. ■

बैर

पूरा शहर सांप्रदायिक हिंसा की गिरफ्त में था. दो रोज पहले ईद के दिन जिस फसाद की शुरूआत हुई थी, उसका अंत सैकड़ों लोगों की बलि के बाद भी नहीं हुआ था. रोज दस-बीस लोग मर रहे थे. पुलिस की गाड़ियां घायलों व मुर्दों को ढोने में मुस्तैदी से लगी हुई थीं.

ऐसी ही एक पुलिस गाड़ी उस रोज सदर के अहाते में आकर रुकी. तब रात के कोई साढ़े ग्यारह बजे थे और शहर के बीचोंबीच का हिस्सा होने के बावजूद वहां उस वक्त झींगुरों की आवाज गूंज रही थी. पुलिस गाड़ी के ड्राइवर वाले हिस्से से एक अधपके बालों वाला अफसर-नुमा व्यक्ति कूदा. उसने लगभग चीखते हुए अपने मातहतों को कुछ हिदायत दी और भागता हुआ अस्पताल में घुस गया.

डाक्टर ओमर इमर्जेंसी वार्ड का अंतिम बार मुआयना करके अभी-अभी अपने कमरे में आकर बैठे थे. उनके सामने मेज पर मरीजों की तालिका पड़ी हुई थी. तभी वो अधपके बालों वाला पुलिस अधिकारी दाखिल हुआ.

"कुछ और घायल हैं डाक्साब." आते ही बिना किसी औपचारिकता के उसने सूचना दी.

"भई, यहां पर एकदम जगह नहीं है. आप उन्हें एल. एल. आर. ले जाइए." डाक्टर ने लगभग ऊबे हुए स्वर में कहा.

"आप उन्हें देख तो लेते. उनमें से कुछ शायद अधिक सीरियस हैं." पुलिस अधिकारी ने कहा. डाक्टर को लगा, उसकी बातचीत में पुलिसिया लहजा नहीं है. वे उसके साथ बाहर जाने को तैयार हो गये.

बाहर पहुंचकर डाक्टर ने देखा, ट्रक के पिछले हिस्से में कोई दो दर्जन से अधिक व्यक्ति किसी कबाड़ की तरह एक-दूसरे पर लदे-फंदे पड़े हुए थे. ज्यादातर बेहोश थे और तेज धारदार हथियारों के शिकार थे, पर कुछ होश में थे.

अपने मतलब के, जिन्हें तुरंत चिकित्सा की जरूरत थी, मरीज ढूंढ़ने के दौरान ही डाक्टर ने एक दृश्य देखा. गाड़ी में दायें किनारे लेटा एक लंबा-तगड़ा आदमी, जिसके सिर व पसलियों में चाकू की गहरी चोटें थीं, नीचे की ओर बेहोश पड़े एक जनेऊधारी के सिर पर निरंतर लातें मारे जा रहा था. डाक्टर ने गौर से देखा, लातें चलाने वाला व्यक्ति पिछले कुछ घंटों में अपना काफी खून बहा चुका था और बेहद कमजोर था. उसे जल्दी ही उचित चिकित्सा की जरूरत थी, पर उसके भीतर जैसे हिंसा का लावा उफान मार रहा था. सांप्रदायिक वैमनस्य का यह उदाहरण देखकर डाक्टर सरीखे मजबूत मन के व्यक्ति भी पलभर को सहम गये. ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकार

आतंक व उलझन के मारे करीमन आपा जैसे बुत बन गयीं. बाहर दंगाइयों की टोली उनका नाम ले-लेकर चिल्ला रही थी. उस टोली की मांग थी कि अपने घर में घुसे एक हिंदू को बाहर निकालो, पर यह कैसे कर सकती थीं करीमन आपा! उनके घर में घुसा हिंदू सिर्फ हिंदू नहीं, उनका दामाद भी था. वह ईद मनाने अपनी बीवी और दो बेहद खूबसूरत बच्चों के साथ आया हुआ था. उसे क्या पता था, यहां यह कहर ढह जायेगा.

"वह मेरा दामाद है सिरफिरो!" शुरू-शुरू में तो आपा ने झरोखे से झांककर नीचे मचलती दंगायी टुकड़ी से कहा था, लेकिन उनकी बात का कोई अनुकूल असर नहीं पड़ा था, बल्कि भीड़ में से किसी लफंगे का स्वर गूंजा था, "दामाद है तो फिर उसे अपनी. . .में डाल लो."

उमर भर बुर्के की सीमाओं में रही करीमन आपा इस कड़ुवी फब्ती को सह नहीं पायी थीं और झरोखे से ही लगकर ढह गयी थीं, "या खुदा!" उन्होंने लंबी-सी आह भरी थी. उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें! उनकी चेतना उनका साथ छोड़ने का एलान कर रही थी, पर दामाद की फिकर वे अपने आपसे कैसे निकाल पातीं, इसलिए जबरदस्ती होश समेटे बैठी रहीं.

"बुढ़िया मानेगी नहीं, लगा दो आग!" तभी नीचे से हल्ला उठा.

करीमन आपा की तबीयत हुई, उठकर देखें, क्या वाकई आग लगा दी गयी है, पर उनके पैरों ने उनका साथ नहीं दिया. उनके शरीर ने उनका साथ नहीं दिया. कुछ ही देर में झरोखे से कुछ आंच लगने लगी तो उनकी चेतना भी उनसे जुदा हो गयी, पर होश खोते-खोते उन्होंने सामने कुछ दूरी पर तख्त पर गुमसुम बैठे अपने दामाद, बिटिया और दोनों नातियों को देखा, शायद अंतिम बार. उनका मन हुआ कि वे अपने दोनों सलोने नातियों को प्यार कर लें, लेकिन वे यह नहीं कर सकीं. . .

अब झरोखे से आंच नहीं, साक्षात आग की लपटें प्रवेश कर रही थीं, जिनमें जल रहे थे करीमन आपा के बालों की चटख एक अजीब-सी धुन पैदा कर रही थी, शायद कोई मातमी धुन! □

आसपास बिखरी कहानियां

समझदारी

■ पृथ्वीराज अरोड़ा

तीसरा आदमी भी जब उसकी प्रार्थना पर न रुका तो वह निराश होकर एक ओर खड़ा हो गया. इस शहर में किसी के पास भी उसकी बात सुनने का वक्त नहीं था. दरअसल उसे एक पेन खरीदना था और उसकी खरीदारी में वह किसी की मदद चाहता था, क्योंकि इससे पहले उसने कभी पेन नहीं खरीदा था. पेन से सीखी जाने वाली विद्या से भी उसका कभी वास्ता नहीं पड़ा था.

उसने निगाह उठाकर आसमान की ओर देखा. यह जानकर कि थोड़ी देर में अंधेरा हो जायेगा, वह उद्विग्न हो उठा, तो क्या वह बिना पेन खरीदे ही लौट जाये?

वह लौटने की बात सोचकर दो कदम ही आगे बढ़ा था कि उसके पैर रुक गये. गांव से चलते हुए उसके पोते ने कहा था, "दादा, आप शहर जा रहे हैं न?"

"हां बेटे!"

"मेरे लिए एक पेन लेते आना."

"तुम्हारे पास पेन नहीं है क्या?"

"एक था, कल टूट गया. मास्टरजी ने बहुत काम दे रखा है, वह करना है."

सोचते-सोचते उसने पेनवाले की ओर एक बार फिर देखा, जो लगातार आवाजें लगा रहा था, "पेन एकेक रुपये में. . . .पेन एकेक. . . .!"

सामने से आते एक युवक को देखकर उसे कुछ आशा बंधी. उसने आगे बढ़कर कहा, "एक अर्ज़ है!"

"कहो?"

"मुझे एक पेन खरीदना है."

"तो खरीद लो."

"आप खरीद दीजिए."

युवक ने बूढ़े को गौर से देखा. फिर पेनवाले से एक पेन लेकर निब को कागज पर चलाकर बूढ़े को देते हुए उसकी उंगलियों में फंसा एक रुपए का नोट लेकर दुकानदार की ओर बढ़ा दिया.

बूढ़ा आश्वस्त हो पेन को जेब के हवाले कर खुश होकर बोला, "यह ठीक है! शुक्रिया!"

"पर बाबा!" युवक ने पूछा, "तुम्हें यही करना था तो मुझे बीच में लेने की क्या जरूरत थी?"

"बेटा, एक तो मुझे पेन-वेन की कुछ समझ नहीं." बूढ़ा बोला, "ऊपर से ये शहरवाले दूकानदार, गांववालों को भोला-भाला समझ गलत चीज देकर लूट लेते हैं."

"पर मैं भी तो शहर वाला हूं!"

"पर तू दूकानदार नहीं है बेटे, दूकानदार नहीं है. . .!" बड़बड़ाता हुआ बूढ़ा अपनी राह चल दिया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

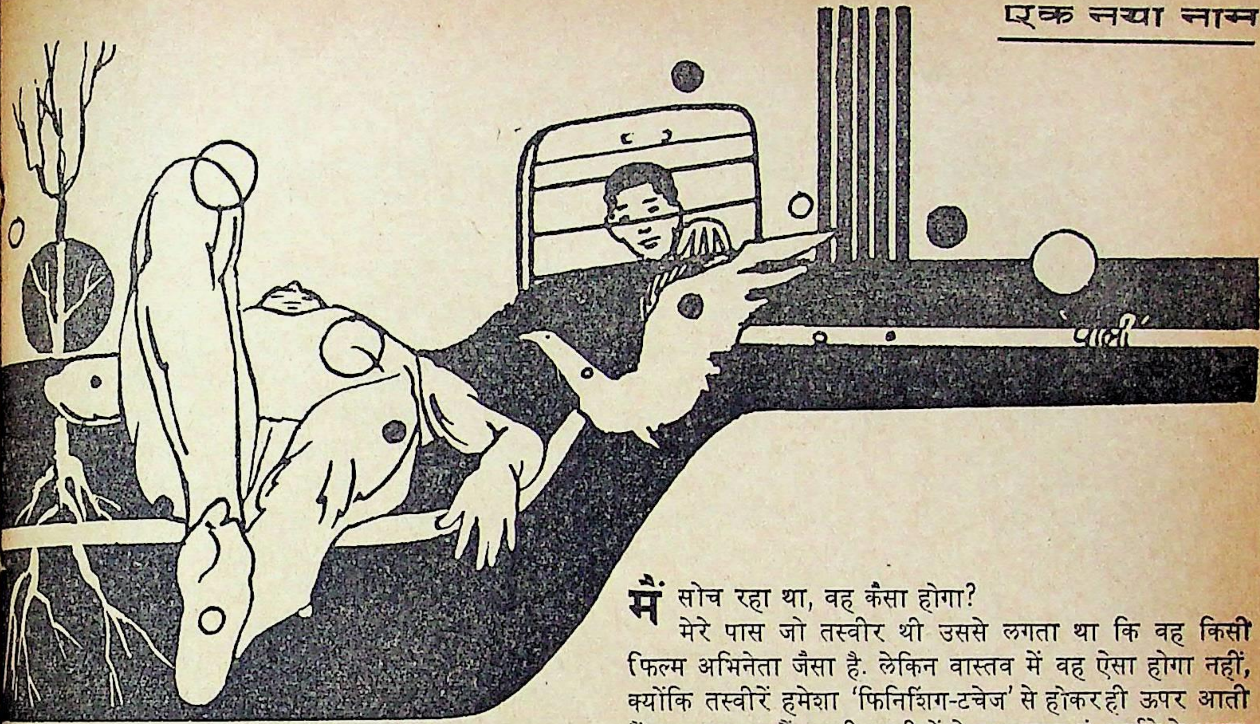

ज़िंदगी के हाशिए पर

• रंजन

'ऐसा लगता है जैसे जिंदगी के खूबसूरत हाशिए पर मौत आवारा खड़ी मेरा इंतजार करती रहती है—मैं उसके इस दर्शन पर बहस करता हूं—मौत कभी किसी का इंतजार नहीं करती. मौत सामने खड़ी तो दिखायी दे सकती है लेकिन इंतजार!'

मैं सोच रहा था, वह कैसा होगा?

मेरे पास जो तस्वीर थी उससे लगता था कि वह किसी फिल्म अभिनेता जैसा है. लेकिन वास्तव में वह ऐसा होगा नहीं, क्योंकि तस्वीरें हमेशा 'फिनिशिंग-टचेज' से होकर ही ऊपर आती हैं. यह अनुभव मैं अपनी तस्वीरों से उठा चुका हूं. आईने से अलग तस्वीर के चेहरे को देखता हूं तो विश्वास नहीं होता. . . .फिर वह?

वैसे तो वह वैसा ही था जैसा कि मैं. एक-सा कद, एक-सी काठी, एक-से शौक, एक-सा चुलबुलापन, एक-सी आदतें. स्कूल-भर में पहचाने-जाने वाले दो शैतान, लेकिन दोनों क्लास के प्रथम श्रेणी के छात्र. अध्यापक भी कहें तो क्या! दोनों के बिना स्कूल की उंगलियां शहीद. खेल से लेकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक, इससे लेकर रेजल्ट तक. . . .बस आगे ही आगे. हां! हिंदी के पीरियड में जाने उसे क्या हो जाता था! 'रेजल्ट' से पहले तक वह किसी रोगी की भांति लगने लगता, कहता रहता, "यार तेरी जुबान की 'पोइट्री' एकदम धामड़ है, पल्ले ही नहीं पड़ती. ऐसा लगता है जैसे जिंदगी के खूबसूरत हाशिए पर मौत आवारा खड़ी मेरा इंतजार करती रहती है." मैं उसके इस दर्शन पर बहस करता हूं, "मौत कभी किसी का इंतजार नहीं करती. मौत सामने खड़ी तो दिखायी दे सकती है लेकिन इंतजार!" इस पर वह हंस देता है और बहस. . . बराय-बहस होकर रह जाती है और वह स्वीकारता है कि उसने जो कुछ कहा, वह किसी शायर का विचार था, उसका नहीं. बहसें यूं ही अपरिपक्व मस्तिष्क की उठा-पटक होतीं, किंतु मार्कशीट में वह मुझसे बढ़कर हिंदी में अंक प्राप्त करता और मैं आश्चर्य-चकित रह जाता.

उसकी नानीजान उर्दू बाजार में इंपीरियल प्रेस के पास में ही रहा करती थीं. तीन कमरों का छोटा-सा मकान था, लेकिन साफ-सुथरा. एक नौकरानी थी जो नानीमां के घर का सारा काम करती थी. उस नौकरानी को नानीमां ने ही पाला था और जब वह जवान हुई तो उसकी शादी एक अफसर के ड्राइवर से कर दी थी, लेकिन शादी के एक वर्ष बाद ड्राइवर ने उसे तलाक दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था क्योंकि वह किसी दूसरी लड़की में दिलचस्पी लेने लगा था, जो कुछ पैसेवाली भी थी और उसके नाम एक मकान भी था. तलाक के बाद नौकरानी नानीमां का साया बनकर उन्हीं के घर रहने लगी थी.

मैं सलाम के साथ उसके घर लगभग रोज जाता था. दरियागंज से उर्दू बाजार दूर ही कितना था! अक्सर दोपहर का भोजन मैं सलाम के साथ ही करता. वह नौकरानी, जिसे नानीमां 'आयशा' कहकर पुकारती थीं, सलाम के साथ मुझे भी 'मीट' परोस देती और हंसकर कहती, "ले लो! नानीमां से नहीं कहूंगी." और मैं रस ले-लेकर मीट को खाने लगता. मुझे आयशा के हाथ का बना मीट बहुत पसंद आता था. वह बताया करती थी कि असलम की वाल्दा उससे भी अच्छा मीट बनाना जानती थीं और उन्होंने ही उसे सिखाया था. उनके हाथ का बना मीट खाने वाला उंगलियां ही चाटता रह जाता था.

▣

आयशा से मेरी पटती थी, क्योंकि वह मेरी कमजोरियों को छुपाती थी, लेकिन असलम लड़ने के बाद मेरी इन्हीं कमजोरियों से लाभ उठाने की सोचता रहता था. एक बार ईद में आयशा ने नये कपड़े पहन रखे थे और वह धुली-धुलाई साफ कपड़ों में मुझे अच्छी लग रही थी. उम्र में वह मुझसे काफी बड़ी थी, लेकिन इश्क में उम्र की शर्त नहीं हुआ करती. मैं असलम के कमरे में लेटा आयशा के हुस्न पर ही विचार प्रकट कर रहा था कि इतने में वह स्वयं सेवइयां लेकर आ गयी और हंसकर बोली, "इस तरह मुझे मत देखा करो, छोटे हो." मैं पानी-पानी हो गया. असलम ने अंगूठा दिखाकर कहा, "ले....और देख! साला नवाब वाजिद अली-शाह बनने के चक्कर में था." उसने कहा, "आयशा को दस रुपये दो, नहीं तो नानीमां से शिकायत कर दूंगा कि तू आयशा से क्या चाहता था और तू मीट....!" घबराकर मैंने जेब से 10 रुपये का नोट दे दिया. हालांकि यह नोट मैं उस दिन एक पुस्तक खरीदने के लिए घर से लाया था. मैं नहीं जानता कि वह नोट उसने आयशा को दिया या नहीं, लेकिन इतना विश्वास है कि वह नोट हम दोनों पर ही खर्च हुआ होगा.

डर की वजह यह थी कि मेरे पिता पी. आई. बी. के बड़े अधिकारी थे. धर्म-कर्म में उनका मन काफी लगता था. मीट-मछली से वह सदैव दूर रहते. इस मामले में वह मेरी माताजी से भी दो गज आगे थे. दोनों ही पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन के शौकीन थे, लेकिन जाने क्यों मैं इन सबसे दूर था. मुझे पूजा-पाठ में कोई दिलचस्पी नहीं थी. अक्सर मां कहतीं, "मन्नतों-संतान विद्रोही हुआ करती है." पिताजी चाहे प्यार में ही कहते हों, लेकिन उसमें भी एक संकेत हुआ करता, "तुम कहो, मैं नहीं कह सकता. मेरा अशोक अगर पूजा-पाठ नहीं करता तो क्या हुआ! कोई मांस-मछली खाने तो नहीं लगा."

सलाम धमकाता, "अंकल से कह दूं कि तू मीट....?" मेरा रोआं कांप उठता. फिर मैं वह सब कुछ करने लगता जो वह चाहता, लेकिन अंदर ही अंदर कुढ़ता रहता. मैं नहीं चाहता था कि अपने मम्मी-डैडी के सामने एक अपराधी के रूप में मेरी पेशी हो. मुझे दोनों से, जो बहुत बड़ा भ्रम था, वह यह कि मेरा अपराध जानकर वे मुझसे बोलना बंद कर देंगे. यही मैं नहीं... था. भला सोचिए....

एक बार....याद आ रहा है. डैडी ने उर्दू पढ़ाने के लिए मोली साहब को मुझ पर लाद दिया, कहा, "इनसे उर्दू भी ... उर्दू पढ़ने से तुम्हारी बोली सुधर जायेगी और आगे ... आई. ए. एस. कंपीटीशन में कठिनाई पेश नहीं आयेगी. तब ... काफी आनाकानी की थी. 'सीन', 'शीन' के उच्चारण में ... बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा. अंग्रेजी, हिंदी....उर्दू....तंग होकर मैंने मोली-साहब को भगाने की योजना ... ली. झूठमूठ मम्मी से कह डाला, "मोली साहब से मैं नहीं पढ़ूंगा. वह मुझसे बदमाशी की बातें करते हैं." जाने ... ऐसी बात मेरे मस्तिष्क में आ गयी थी. सुनकर मम्मी का ... एकदम सुर्ख हो गया और आंखों से चिंगारियां फूटने लगीं. उ... डैडी से कहा और डैडी गंभीर हो गये. अगले दिन मोली ... को मम्मी-डैडी दोनों ने आड़े हाथों ले लिया तो मोली ... कांपने लगे, "खुदा गारत करे मुझको, जो इस उम्र में मुझे ... सूझे! मुझे दोजख की आग जलाये और फिन्नार कर दे." वह ... रुंआसे-से हो गये, बोले, "अमां क्यों इस सफेद दाढ़ी को का... से रंगना चाहते हो! क्यों साहबजादे....सच कहो कि मैंने.... मोली साहब की घुड़की मझे खा गयी और झूठ के ... डगमगा गये. पहला झूठ, वह भी इतना कमजोर....आं... आंसू फूट पड़े. परिणाम यह हुआ कि मम्मी-डैडी कोई 7-8 ... तक मुंह फुलाये रहे और मेरा जीना दूभर हो गया. अंत में ... ही माफी मांगकर उनसे यह वादा करना पड़ा कि मैं उर्दू भी प... और भविष्य में कभी झूठ नहीं बोलूंगा. इस घटना के बाद म... साहब ने तो नहीं, हां एक दूसरे 'मास्साहब' ने मुझे पढ़ाना ... किया और तब कहीं मैं अपने मम्मी-डैडी को राजी करने ... कामयाब हो सका. आज सोचता हूं, अगर मुझे उर्दू न आती ... एक प्यारी और मीठी भाषा से वंचित रह चुका होता. कभी-... मम्मी-डैडी जैसे लोग कैसी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता के ... कर जाया करते हैं.

▣

जब मैंने पहली बार सलाम की अनुपस्थिति में पाकि... से आया हुआ उसके अब्बू का पत्र पढ़कर नानीमां को सुनाया ... नानीमां आश्चर्यचकित रह गयीं. आश्चर्य की बात थी ही. ... 1947 के बाद की नस्ल, वह भी हिंदू, इतनी सरलता से उर्दू ... सकती है, चौंकाने से कम वाली बात न थी. मुझे याद है कि ... मां (जिन्हें उन दिनों बहुत कम दिखायी दिया करता था) ने ... को आंखों के समीप लाकर धुंधलाये हुए अक्षरों को देर तक ... था और उन पर गर्म-गर्म आंसू गिराये थे. बहुत देर बाद कहा ... "शरीफ हिंदू घरानों की बोली में तो मैंने 'अदब' और 'तह... पायी थी, लेकिन 'नयी हिंदू-नस्ल' में इसकी बानगी देखकर ... मैं दावा करने पर मजबूर हूं कि उर्दू आगे भी जिंदा रहे... हालांकि नानी मां के वैचारिक स्तर को देखते हुए उर्दू की ... 'उर्दू पत्र-व्यवहार' तक ही सीमित रहनी चाहिए, कुछ ऐसा ... उनका मापदंड था, जबकि मैं उर्दू विषय के अंतर्गत मीर, ... इकबाल, गालिब, फैज और फिराक को थोड़ा-थोड़ा पढ़कर ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

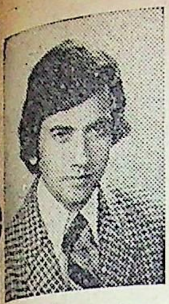

▣ रंजन
जन्म : 2 जनवरी, 1952
'आज की कहानी की यात्रा घटनाओं, संयोगों, कल्पनाओं से होकर जीवन की प्रक्रिया के बीच होती है. उसमें व्यक्ति का मूल्यांकन भी उसकी सामाजिक समग्रता के आधार पर किया जाता है...'
संप्रति : शोध

नया मापदंड खोज रहा था.

सलाम की उर्दू मुझसे अच्छी थी और वह उर्दू में गजलें भी कहने लगा था. हालांकि उसकी अटपटी गजलों की मैंने कभी भी प्रशंसा नहीं की. नानीमां ने एक बार उसकी किसी गजल को सुनकर उदास लहजे में कहा था, "सलाम की मां ताहिरा बड़ी अच्छी-अच्छी गजलें कहा करती थी. उसकी गजलों को पढ़-पढ़कर ही सलाम के अब्बू ने ताहिरा से मुतास्सिर होकर शादी का पैगाम भिजवाया था." कहते-कहते अनायास नानीमां का कंठ भर आया, बोली, "मुआ पाकिस्तान क्या बना कि दिलों के टुकड़े हो गये. इधर सलाम के वालिद की जुदाई में ताहिरा का दिन-रात रोना, उधर सलाम का पैदा होना. ज़चगी में बेचारी मर गयी, लेकिन चमन (सलाम के अब्बू) की सूरत को न देख सकी. तब से घुट्टियां पिला-पिलाकर असलम को जिलाती आ रही हूं. चमन हर बार सलाम को पाकिस्तान बुलाता है, लेकिन यह ऐसा बेमुरव्वत है कि वहां जाता ही नहीं. मेरी रीढ़ से चिपका हुआ है. . . ." मुझे याद है, नानीमां किसी आंतरिक पीड़ा से व्यथित हो रो पड़ी.

घुट्टियों वाली बात भी खूब ही थी. जब भी मैं सलाम को छेड़ता और वह क्रोधित होकर मुझे पीटने की धमकी देता तो मैं जलकर उससे यह जरूर कहता, "अबे तू क्या करेगा. . . पहले घुट्टी पीना तो छोड़." अगर संयोगवश ऐसी बात सलाम के घर में होती तो आयशा काफी आनंद लेती. वह सचमुच मिट्टी की देहरी में कपड़े की बत्ती डालकर और उसे दूध से भिगोकर मेरे सामने बढ़ा देती, कहती, 'लो मिस्रा बाबू. . . .तुम भी घुट्टी पीना शुरू कर दो, क्योंकि तुम भी सलाम भैया की ही तरह घुड़क रहे हो.' इस पर न जाने कैसे हम दोनों एकाएक हंस पड़ते और फिर समझौते के बाद लड़ाने का कंपीटीशन शुरू हो जाता. इस तरह के कंपीटीशन में मैं कभी नहीं हारा, बल्कि सलाम को हराया ही है. हां! एक बार जरूर हार खायी, जब आयशा ने कहा, "मुझ से आंख लड़ाओगे मिस्रा बाबू ? मुझे हराओ तो जाने." तब अहं था कि पलक झुक ही नहीं सकती. कंपीटीशन शुरू हो गया और मैं उसकी गहरी झील जैसी आंखों में डूबता चला गया. कहां तक पहुंचा हूंगा, याद नहीं. कितनी बार उछलकर डूबा हूंगा, यह भी याद नहीं. कानों में से आती हुई आयशा की आवाज याद है, "ऐसे तो आंख नहीं लड़ायी जाती मिस्रा बाबू. . . .पलक मार-मारकर मुझे उन नजरों से देख रहे हो जैसे इन रास्तों से दिल में ही उतर जाओगे". . . .फिर उसका खनकता हुआ अट्टहास सुनाई दिया था, फिर पीठ पर जोर से सलाम की 'धप्प' और झील से मेरी छलांग . . . .ओह!

"अरे माई गॉड!" मैं एकदम घबरा जाता हूं, "डैडी को जल्दी से फोन कर. . .लेकिन दौड़कर सलाम के बजाय मैं ही नंबर डायल करने लगता हूं, "डैडी! सलाम आया है. . .उसकी नानी पर फिर दिल का दौरा पड़ा है. . .प्लीज डैडी! किसी अच्छे डॉक्टर को फोन कर दीजिए. . ." डैडी, मम्मी से बातें करते हैं. मम्मी हम दोनों को कार में बिठाकर डॉ. खुराना के यहां पहुंचती हैं. डॉ. खुराना मेरे डैडी के बहुत गहरे मित्रों में से थे और मम्मी का बहुत आदर करते थे, तुरंत तैयार हो गये. लेकिन सलाम के मकान की चौखट को पार करते ही हम लोग ठिठक जाते हैं.

नानीमां पर यह तीसरा हार्ट-अटैक था. कहते हैं, दिल के रोगियों पर तीसरा हमला जानलेवा होता है और नानीमां को देखकर मैं यह बात मानने पर मजबूर हो जाता हूं. सलाम तो दहाड़ मारकर मूर्छित हो गया और आयशा बाल छिटकाये करुण विलाप कर-करके सीना कूट रही थी. दृश्य देखा नहीं जा रहा था. मेरी मम्मी के नेत्र भी सजल हो जाते हैं और मैं स्वयं के बारे में क्या कहूं कि मेरी क्या स्थिति थी, बस ऐसा समझिए कि सकता-सा हो गया था. विश्वास नहीं हो रहा था कि नानी मां की मृत्यु हो गयी है.

आसपास के रहने वाले लोग मकान में एकत्र होने लगे थे और सलाम को सांत्वना देने लगे थे. लेकिन सलाम कैसे अपने को शांत करता, उसका तो सब कुछ समाप्त हो चुका था! भारत में नानी मां के अतिरिक्त तो उसका कोई दूसरा था भी नहीं. सब पाकिस्तान जा चुके थे. नानीमां अपने स्वर्गीय पति की देहलीज को छोड़कर नहीं जा सकी थीं. छोड़कर गयीं भी तो सांस तोड़कर. . .

▣

एक मकान, कुछ दूकानें. . .कुछ पोटलीं में सलाम की बहू को देने के लिए रखे गहने और कुछ शादी के जोड़े, थोड़ी नकदी, बस! यही कुछ छोड़ा था नानीमां ने. आयशा के भविष्य का घोर अंधेरा तो कब्रिस्तान के अंधेरे जैसा होकर मुंह बाये खड़ा था. क्या होगा इसका! कहां बेचारी जायेगी! कैसे जीवन बसर करेगी यह अबला! मम्मी के सोचने के लिए ये प्रश्न बाकी थे. मुसलमान थी, वरना तो वही उसे अपने यहां काम-काज के लिए रख लेतीं. वह तो इस हालत में भी रखने को तैयार हो जायेंगी. लेकिन वे सभ्य हिंदू स्त्रियां क्या कहेंगी, जो अपने धर्म के प्रति आस्था रखती हैं और जिनका उनके यहां बराबर आना-जाना रहता है. समाज में रहकर समाज से पृथक तो नहीं रहा जा सकता! समाज से विद्रोह करने के लिए साहस चाहिए, वह उनमें नाममात्र भी नहीं. जो सच्चे दिल से ईश्वर के आगे झुक जाये, वह हरेक के आगे झुक जाता है, वह कभी विद्रोह नहीं कर सकता, कभी रीढ़ की हड्डी को सीधा नहीं कर सकता. . .भय! भय का भूत गारों से निकलकर आज तक मनुष्य का पीछा करता चला आ रहा है. मम्मी एक धार्मिक स्त्री होते हुए भी अंदर से कुछ कमजोर दिखायी देने लगती हैं.

डैडी इसका इलाज खोजते हैं. उन्हें विभाग का एक मुस्लिम चपरासी मिलता है, जिसके दो बच्चों को छोड़कर उनकी मां संसार से बिछुड़ चुकी होती है और वह आयशा को अपनाने के लिए तैयार भी हो जाता है, लेकिन आयशा सलाम भैया को छोड़ने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं है. वह उसके साथ पाकिस्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना चाहती है. जीवनपर्यंत सलाम भैया की नौकरानी बनकर जिंदगी गुजार देना चाहती है. उसे सलाम से बेपनाह प्यार है, और सलाम की ही तरह वह उसके बच्चों को भी गोदियों में खिलाने की इच्छा रखती है. बस! उसे सलाम के अब्बू के पाकिस्तान से आने का इंतजार है, जिन्होंने हवाई डाक से सूचना दी है कि वह शीघ्र ही सलाम को लेने आ रहे हैं.

बड़ी दौड़-धूप और प्रयत्नों के बाद डैडी ने दोनों के पासपोर्ट बनवा दिये और वीसों की भी कोशिश कर दी, लेकिन मेरा दिल बैठा जा रहा है. नानीमां की मृत्यु के बाद से डैडी के परामर्श से सलाम मेरे पास ही रहता है, लेकिन आयशा सलाम के घर में ही रहती है. हम दोनों रात गये तक अपलक एक-दूसरे को देखते रहते हैं. फिर वही पलक मारकर मुझे जीतें रहने देना चाहता है. मुझसे नजर टूटती है तो वह छत को तकने लगता है. लंबी और गहरी-गहरी सांसें लेकर सलाम मुझे अंदर से और भी व्याकुल कर देता है. बहुत कम बातें हो पाती हैं, लेकिन मूक नेत्रों से दोनों काफी कुछ कह-सुन लेते हैं, काफी कुछ समझ लेते हैं.

हायर सेकेंडरी का परीक्षा-फल आ गया है. डैडी फोन पर सलाम को पहले, बाद में मुझे बधाई देते हैं. इस बार सलाम ने टॉप किया था. मेरी चौथी पोजीशन थी, लेकिन मैं खुश था कि सलाम ने टॉप किया है और उसे 'टॉप' करना ही था. . .इतना ब्रिलिएंट और जीनियस स्टुडेंट और था ही कौन! डैडी कहते हैं, "भारत में रहो सलाम! तुम्हारा फ्युचर ब्राइट है. तुम्हें बहुत आगे तक मैं पढ़ा सकता हूं. इस तरह तुम्हें एक गार्जियन और अशोक को उसका अपना दोस्त मिल जायेगा. क्यों अशोक?" मैं प्रश्नसूचक दृष्टि से सलाम को देखता हूं जो मुंह लटकाये अपने में ही डूबा प्रतीत होता है, मौन. . .भावरहित. गहरी सांस भरना, भरकर छोड़ना, मानों उसकी आदत बन गयी हो. कहता, "नहीं! मैं अब्बू के साथ पाकिस्तान जाऊंगा. मैंने आज तक अब्बू को देखा भी तो नहीं है. फोटो देखने से क्या पता कि वह कैसे हैं." सुनकर मुझे दुःख हुआ था, लेकिन कोई बहुत ज्यादा नहीं. मैं जानता था कि पिता के बिना पुत्र अपने को कितना असहाय और दीन समझने लगता है. सलाम की तो अब नानी भी जीवित नहीं रही थीं.

चमन चाचा पाकिस्तानी गृह-सचिवालय में किसी अच्छी पोस्ट पर थे. नहीं मालूम, पाकिस्तान सरकार उन्हें भारत क्यों नहीं आने देती थी, जबकि उनका इकलौता बेटा भारत में था. वह तो सलाम की मां की मृत्यु पर भी न आ सके. लेकिन इस बार उन्हें वहां की सरकार ने भारत जाने की आज्ञा दे दी थी. वह विमान द्वारा दिल्ली पहुंचे और डैडी ने उनका स्वागत किया. मुझे आश्चर्य था कि दोनों एक-दूसरे से भलीभांति परिचित थे और रह-रहकर गले मिल रहे थे. चमन चाचा ने सलाम को ऊपर से नीचे तक देखा, जैसे फौजी पारखिए देखते हैं, फिर देखकर वह मुस्कराये और खरखराती फौजी जुबान में बोले, "ओये! तू है मेरा सींकिया पहलवान?" सुनकर सलाम ने गर्दन झुका ली और मैं डैडी के पीछे दुबक लिया. सोचा, अगर सलाम जो अच्छा-खासा है, उसे सींकिया कह दिया तो मुझे देखकर जाने क्या कहें. . .! लेकिन चमन चाचा ने मुझे कुछ नहीं कहा, बल्कि खूब प्यार किया, बोले, "अशोक भी अपने बाप पर गया है. . .लवली!"

दो गुजराती लघुकथाएं

■ विनोद भट्ट

लोक कथा—१९७९

भ्रष्टाचार के राक्षस को सरे-आम जलाने का एक कार्यक्रम तय किया गया था. घास-फूस, पटाखे आदि भरकर हम लोगों ने एक महाकाय राक्षस तैयार किया. बाद में उसे खुले मैदान में खड़ा किया गया. उसे जलता हुआ देखने के लिए बड़ी खासी भीड़ जमा हो गयी थी.

हममें से एक ने भ्रष्टाचारी राक्षस पर मिट्टी का तेल छिड़का. बस, अब दियासलाई लगाने भर की देर थी, इतने में रामूचाचा ने एक टेक्निकल मुद्दा उठाया, इस भ्रष्टाचारी राक्षस को आग कौन लगायेगा? फिर तो आपस में जोरदार चर्चा शुरू हो गयी.

आखिर सर्वसम्मति से तय किया गया कि, "जिसने अपने जीवन में एक भी भ्रष्टाचार न किया हो, वही इस राक्षस को आग लगा सकेगा. . ." हम सभी आधे घंटे तक एक-दूसरे के सामने देखते हुए खड़े रहे. इतने में वहां से गुजरते हुए एक ठेले वाले पर सबका ध्यान गया. वह ठेले वाला भ्रष्टाचार शब्द के शुद्ध हिज्जे भी नहीं बोल पाता था, अतः उसके हाथ में माचिस थमाते हुए उस भ्रष्टाचारी राक्षस को अग्नि देने के लिए हमने समझाया.

ठेलेवाला एक के बाद एक दियासलाई सुलगाकर राक्षस को दागता जा रहा था, पर राक्षस तो जलने का नाम ही नहीं लेता था. हम सब आश्चर्य से उसकी ओर ताक रहे थे. इतने में अट्टहास के साथ वह बुत बोल उठा, "आप लोग मुझे किसी भी हालत में जला नहीं सकते, क्योंकि घास-फूस, मिट्टी का तेल सब कुछ मिलावटी है"

और हम वापस लौट गये. □

हैरत थी कि रात गये तक डैडी के कमरे में बड़े-बड़े सरका अफसर, जो पहले कभी नहीं आये और जो डैडी से पोस्ट में बड़े चमन चाचा से मिलने आते और न जाने किस तरह की अं में बातें होतीं, मम्मी भी नहीं समझ पा रही थीं. सलाम और दोनों बहुत खुश थे और नानीमां को लगभग भूल चुके थे. आय नानीमां की मृत्यु के बाद से ही गिरने लगी थी, रक्त सूखता जा था और आंखें फैलती चली जा रही थीं. वह चमन चाचा से मिल कोई बहुत प्रसन्न नहीं हुई और न ही इस खबर को सुनकर प्रसन्नता हुई कि चमन चाचा उसे पाकिस्तान ले चलने के लि राजी हो गये हैं. वह तो गुमसुम नानीमां की याद में खोयी रहती थी.

जब तक चमन चाचा रहे, घर भर में बड़ी चहल-पहल र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीताहरण

बिल्कुल ऐन मौके पर रावण का फोन आया कि ब्लडप्रेशर बढ़ जाने की वजह से वह इस शो में काम नहीं कर सकेगा.

सभी पशोपेश में पड़ गये. खुद राम भी चिंतित हो उठे कि बिना रावण के रामायण कैसे आगे बढ़ेगी?

इतने में दरवाजे के पास खड़े हुए लंबे-चौड़े बदन वाले गोरखे पर दिग्दर्शक की नजर थम गयी और वह भागते हुए उसके पास पहुंचा.

गिड़गिड़ाते हुए उसने गोरखे से कहा, "प्लीज, तुम्हीं रावण बन जाओ..."

"क्याऽऽ?" गोरखे ने घबराते हुए पूछा. दूसरे दो-तीन आदमी भी दिग्दर्शक की मदद में आ गये और गोरखे को समझाने लगे.

"लेकिन मुझे करना क्या होगा?" उलझे हुए गोरखे ने पूछा.

"तुम सीता को उठाकर ले जाओगे..."

"औरत को?....नहीं साब, औरत जात नुकसान करता है, हम औरत को हाथ नहीं लगायेगा...."

सभी ने मिलकर खूब समझाया. सीता को भगा ले जाने का इतना आग्रह उसकी समझ में नहीं आ रहा था. उस पर भी जब वे लोग सीता को उठा ले जाने के लिए खूब विनती करने लगे तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा.

सीता को ले जाने के लिए राम ने हौले से गोरखे की जेब में दस का नोट सरका दिया. आखिर राम के आग्रह को मानकर वह सीता को भगाने के लिए तैयार हुआ.

....और फिर रावण सीता को उठाकर ले गया.

बस, वह गया सो गया. आज तक न रावण का पता है न सीता का. केवल राम ही नहीं, पुलिस भी सीता की खोज कर रही है... □

अनुवाद : सुशीला जोशी

ढके-छुपे अच्छा स्वादिष्ट मुर्ग, मछली, हरियल का मीट को मिलता रहा. बड़े-बड़े अफसर ये सब दिल्ली के मोती- से मंगावाकर चमन चाचा को खुश कर रहे थे और सलाम से चुराकर मुझे देता जाता था. लेकिन यह सिलसिला साबित हुआ. सब जैसे एक स्वप्न-सा बनकर रह गया. के जाते ही लगा कि मैं अकेला हो गया हूं. अकेलापन को दौड़ने लगा...अजीब-सी स्थिति हो गयी थी. न भूख थी न प्यास, न घूमना था न फिरना...बस तकिये में मुंह मुकुर-मुकुर रोते रहना रात-दिन का मानो नियम-सा बन था. मम्मी-डैडी चिंतित हो उठे थे, लेकिन वे भी क्या कर सकते जानते थे कि मैं सलाम को कितना चाहता था, चाहता हूं. ने नयी दिल्ली के स्टेशन पर देखा था कि हम दोनों लिपटकर कितना रोये थे. उस उम्र की भावुकता को दबाया भी कैसे जा सकता था!

रेंगती हुई ट्रेन की खिड़की से सिर निकालकर सलाम ने हाथ का हरा रूमाल हिलाया और ताकीद की, "भूलना नहीं...खत जरूर लिखना...मैं पहुंचकर खत लिखूंगा...समझे!" अपलक उसकी नजरें मेरे चेहरे पर टिकी रहीं और मैं डिब्बे के साथ-साथ चलता रहा, कुछ-कुछ फासला देकर मेरे पांव खिड़की की ओर लपकते रहे. मैं भी असलम के चेहरे पर नजरें जमाये हुए था ...अचानक भावावेश में मेरी आंखें भर आयीं तो वह चीख पड़ा, "यह क्या अशोक, आखिरी वक्त में तू हार गया....?"

"हां!" मेरा कंठ अवरुद्ध हो चुका था, "आज मैं अपने दोस्त को विजयी देखना चाहता हूं और मेरे आंसू फूट पड़े. ट्रेन ने गति पकड़ ली और मेरे पांव प्लेटफार्म के फर्श पर जमकर रह गये. हरा रूमाल धीरे-धीरे एक नुक्ते में सिकुड़ता चला गया और फिर सब कुछ शांत! डैडी ने कहा, "चलो भई...हो चुकी दोस्ती." तब खयाल आया कि मैं प्लेटफार्म पर अकेला नहीं, साथ में डैडी भी थे. चमन चाचा भी और आयशा भी. लेकिन यह कैसा अनुराग या दोस्ती थी कि बस सलाम ही सामने रहा. रास्ते में डैडी ने बताया कि आयशा का स्वास्थ्य सही नहीं है, वह कंपार्टमेंट में ट्रेन छूटते ही मूर्छित हो गयी थी.

बर्षों बाद आज उसका पत्र आया है, साथ ही एक नये सलाम का फोटो भी. फोटो को देखकर विश्वास नहीं हो रहा है कि यही मेरा दोस्त सलाम है. इतना सुंदर, आकर्षक...वहां की वायु सेना में वह कैप्टेन हो चुका है और मैं संयोगवश यहां. डैडी मुझे आई. ए.एस. में ही बिठाते रह गये और मैं कभी न हारने के कारण सदैव विजयी बने रहने के लिए वायुसेना में कैप्टन बन गया (लेकिन यह कैसी जीत थी...! कैसी हार...! आयशा से मैं हारा नहीं, बल्कि उसमें डूबकर स्वयं को भटकने के लिए छोड़ दिया था...पहले आनंद की अनुभूति हुई थी. दूसरी बार भी नहीं हारा, जानकर सलाम को जिताया, ताकि जिक्र छिड़ने पर वह इस जीत के सहारे ही मुझे याद कर लिया करे...उसने पत्र में मुझे पाकिस्तान आने की दावत दी है और यह इसलिए कि दो माह बाद उसकी शादी होने जा रही है. उसने लिखा है कि, "अगर तुम शादी से एक हफ्ते पहले पाकिस्तान नहीं आये तो यह शादी नहीं हो सकेगी..." मैं इस वाक्य को बहुत बार पढ़ता हूं, लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं कैसे उसकी शादी में सम्मिलित होने के लिए स्वयं को तैयार करूं? ऐसी हालत में जब कि मैं उड़कर कुछ ही घंटों में कराची पहुंच सकता हूं, पंख भी हैं और हौसला भी...लेकिन यह सब व्यर्थ...न पंख ही अपने हैं और न ही शक्ति.

अंदर ही अंदर लगता है, विजयी अशोक मिश्र अब तक की जीती सारी बाजियां एक-एक कर हारता जा रहा है और सलाम के पत्र पर लिखे अक्षर आंसुओं से भीग-भीगकर धुंधले होते जा रहे हैं और कोई नेट विमान ज़ूंऽऽऽ' की आवाज के साथ उड़ता हुआ नीले आकाश की ऊंचाइयों की ओर आजादी के साथ बढ़ा जा रहा है, लेकिन क्या यह नेट सचमुच आजाद है? □

● मुरव्वत मंजिल, रूम नं. 1, बदरबाग, ए. एम. यू., अलीगढ़ (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तकें

सुरेश कांत युवा व्यंग्यकार हैं तथा 'ब से बैंक' उनका पहला उपन्यास है. और नये होने के कारण न तो वह स्वयं को कथ्य तथा शिल्प के आधार पर दोहराते दृष्टिगत होते हैं और न ही पहली रचना की कमजोरियों का अत्यधिक शिकार हुए हैं. हिंदी में व्यंग्य-उपन्यासों की बेहद कमी है. अधिकांश व्यंग्य-साहित्य कहानियों एवं ललित निबंधों में ही बिखरा हुआ है. 'रानी नागफनी की कहानी', 'रागदरबारी', 'हीरक जयंती', 'पांच एब्सर्ड उपन्यास', 'आश्रितों का विद्रोह', 'एक चूहे की मौत', 'प्रोफेसर पुराण', 'एक मंत्री स्वर्गलोक में' आदि उपन्यासों को उंगलियों पर गिना जा सकता है. ऐसे में युवा व्यंग्यकार द्वारा पहली पुस्तक-रचना के रूप में 'व्यंग्य-उपन्यास' को प्रस्तुत करना प्रशंसनीय ही है.

'ब से बैंक' में सुरेशकांत ने बैंक की को जिस प्रकार से तंग किया जाता है, वह उसके लिए असहनीय है. मैनेजमेंट द्वारा उसे गुलाम समझकर काम लिया जाता है, जिसके कारण उसकी कार्य के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया होती है. बैंकों में कार्य-शिथिलता का यही कारण है कि प्रोबेशन के समय हुए कार्य-आधिक्य के कारण संबंधित व्यक्ति में कार्य के विरुद्ध अरुचि उत्पन्न हो जाती है. सुरेश कांत ने प्रोबेशन के समय और उसके बाद कर्मचारी की 'कार्य- कुशलता' का उल्लेख करते हुए लिखा है—"**और स्थिति यह थी कि प्रोबेशन को मैनेजमेंट ने एक कैद की तरह बनाया हुआ था. इस दौरान क्लर्क या अफसर से गधे के समान काम लिया जाता था और शायद इसलिए, प्रोबेशन के बाद क्लर्क लोग दुलत्तियां झाड़कर बदला चुका लिया करते थे.**"

बैंकीय अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार के लिए सुरेश कांत ने 'मैनेजमेंट' को दोषी माना है. भाई-भतीजावाद की सौहार्दपूर्ण भावना से प्रेरित होकर यह व्यवस्था अपने आदमियों को महत्वपूर्ण स्थानों पर बैठाने का प्रयत्न करती है. ऊपर से भय न होने के

मुक्त ऋण की सुविधा का जिस प्र दुरुपयोग करते हैं, अपने नाम पर दारों को अधिक ब्याज दिलवाते हैं सबकी व्यंग्यात्मक चर्चा सुरेश ने उ में की है.

कर्मचारी कामचोर क्यों होते

कामचोर क्लर्कों की ही नहीं, का अफसरों एवं चपरासियों की च 'ब से बैंक' में मिलती है. इसका सुरेश ने अव्यवस्था को ही माना है की व्यवस्था ही ऐसी है कि वह खासे सक्रिय कर्मचारी को निष्क्रि देती है. एक मशीनी ढंग से चलने व्यवस्था में कर्मचारी अपने का उपयोगी नहीं मानता है, वह तो इ मानता है, जिसे उतारकर दूसरे के डालना है. इस स्तर पर उपन्यास बैं सीमा से हटकर देश की संपूर्ण सा व्यवस्था से जुड़ जाता है. घुटनपूर्ण में घुटते ये कर्मचारी कामचोरी के कारण अंततः अनुपयोगी और नि होकर संपूर्ण समाज की गति को ज देते हैं. इसी व्यापक दृष्टिकोण के

नये-पुराने : चावल के दाने

▣ प्रेम जन

परिवेशगत विसंगतियों का सूक्ष्मता से अध्ययन कर उनका विश्लेषण किया है. जिसका भी बैंक से वास्ता पड़ता है, वह प्रायः उसके बाहरी ढांचे से ही परिचित होता है. जब तक हम किसी परिवेश को निकट से नहीं देखते, उसकी विसंगतियों को नहीं जान पाते हैं. यही कारण है कि 'ब से बैंक' में वर्णित बैंक संदर्भित विसंगतियों का चित्रण पढ़कर, जहां मन में वर्णित व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश संचित होता है, वहीं नयी जानकारी के संदर्भ में आश्चर्यजनक प्रसन्नता का भाव भी जागृत होता है.

बैंक में—अफसर-क्लर्कों के संबंध, लेजरों की व्यवस्था, यूनियन के क्रिया-कलाप, बैंकीय अव्यवस्था, बैंकीय भ्रष्टाचार, खातों एवं खातेदारों की स्थिति आदि का सुरेश कांत ने विश्वसनीय चित्रण किया है. प्रोबेशन के समय संबंधित व्यक्ति

कारण महत्वपूर्ण स्थानों पर बैठे ये व्यक्ति भ्रष्टाचार के प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं. 'ब से बैंक' में सुरेश ने ऐसी ही स्थिति मैनेजर की बतायी है. ऋण देने की स्थिति में होने के कारण मैनेजर नामक यह व्यक्ति अपने पद का 'सदुपयोग' करने में हिचकिचाता नहीं है. किसी को ओवरड्राफ्ट दिया जा सकता है और किसी को ऋण. अपने पद का लाभ बैंकों के यह मैनेजर भरपूर उठाते हैं. इनकी पाचनशक्ति बहुत तेज होती है—"**वह हर छोटे-बड़े आदमी से खाता-पीता रहता था. चालू-खाते की असामियों से वह चीनी, चावल आदि की बोरियां खा जाता. सिगरेट के लिए पांच-दस रुपये झटक लेता.**" ऐसे में होता वही है जो इस अव्यवस्था में होना चाहिए—रिश्वतखोर को सुविधाएं मिलती हैं और जरूरतमंद को अंगूठा. यही नहीं, बैंक कर्मचारी ब्याज-

सुरेश की कलम बैंक के परिवेश में ही बंधती अपितु प्रत्यक्ष एवं अप्रत्य से शिक्षा, पुलिस, शासन-तंत्र, धर्म की विसंगतियों की चर्चा भी करती

हमारे पारिवारिक संबंधों में 'अ कितना बड़ा योगदान है, इसका सुरेश ने एक छोटे से प्रसंग में कि बेरोजगार युवक मध्यवर्गीय परि लिए भार होता है, परंतु नौकरी वहीं आंखों का तारा हो जाता "**उस दिन घर में मेरा महत्व बढ़ गया. बहनों को अपने भाई हुआ. . . .बाप की नजरों में भी, मुझे अब तक निकम्मा मानता आ मैं मान्यता पा गया. उस दिन मुझे भी अच्छा खाने को मिला.**"

आर्थिक रूप से पिछड़े कामगार, मजदूर वर्ग की कारुणिक अवस्था, सुंदर बनाने के नाम पर हो रहे अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की झलक भी इस उपन्यास में मिलती है. निर्धन लोगों की अवस्था का वर्णन करने में सुरेश ने जिस व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है, वह लेखक के वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध संचित आक्रोश को अभिव्यक्ति देती है—"**मैदान, पहले मैदान नहीं था. तब वहां निर्धन लोग झुग्गियां डालकर रहते थे. यह उनका सौभाग्य ही था कि उनके जीवन का स्तर कोई नहीं था, अन्यथा यदि वह होता, तो बहुत नीचा होता. कारण, वे इतने कंजूस थे कि कभी भरपेट नहीं खाते थे और इतने टुच्चे थे कि हमेशा फटे-पुराने कपड़े पहनते थे. कुल मिलाकर वे उस दीन-हीन दशा में रहते थे कि बड़े मजे से एक सभ्य आदमी की घृणा का पात्र हो सकते थे. सभ्य आदमियों को घृणा का शौक होता है.**"

सुरेश ने इस वर्ग को उनकी कमजोरियों के साथ प्यार किया है. वह उनकी कमजोरियों को नजरअंदाज न करते हुए उनका चित्रण करते हैं और उनके विरुद्ध हो रहे हर शोषण और अत्याचार के विरुद्ध उनके मन में आक्रोश है.

यूनियन क्या होती है?

कथ्य की दृष्टि से इन सब खूबियों के बावजूद इस उपन्यास में एक बहुत बडी कमी दिखायी देती है. सुरेश ने यूनियन और हड़ताल का नेगेटिव पक्ष ही प्रस्तुत किया है. उन्होंने इन संदर्भों को गंभीरता से न लेते हुए, इसे हास्यास्पद बनाने का प्रयत्न किया है. उसके गलत रूप को चित्रित करना सही नहीं है. 'ब से बैंक' में हड़ताल का रूप इस प्रकार चित्रित है -"**वह केवल हड़ताल के लिए हड़ताल करवा रहा था, उसके पीछे अच्छा-बुरा कोई उद्देश्य उसका नहीं था. उसकी कोई मांगें नहीं थीं, जिन्हें कि मानकर ही हड़ताल बंद करवायी जा सकती.**" और "**किसी भी दफ्तर में यूनियन इसलिए होती है कि जब कोई कर्मचारी मैनेजमेंट को गालियां सुना आये, तो उसे मैनेजमेंट के षड्यंत्रों से बचाया जा सके.**"

सुरेश ने यूनियन का सहयोग उपन्यास में टुच्चे कामों के लिए ही लिया है. ऐसा लगता है कि यूनियन गलत काम कराने का माध्यम है. हो सकता है सुरेश कांत को ऐसी ही किसी यूनियन का अनुभव हो, परंतु लेखक की दृष्टि संकुचित नहीं होनी चाहिए. गधे-घोड़े को व्यंग्य की एक छड़ी से हांकना जायज नहीं है. इसके लिए दिशायुक्त दृष्टि की आवश्यकता है. सुरेश के इस उपन्यास में इसका अभाव दिखायी दिया है. लगता है लेखक का उद्देश्य मात्र जैसे व्यंग्य करना ही है. किस पर करना है, यह दृष्टि अभी उसके पास नहीं है.

'ब से बैंक' ने उपन्यास के शिल्प को कई जगह पर तोड़ा है. वस्तुतः उपन्यास किसी एक कथासूत्र को लेकर आगे नहीं चला——वह जैसे सूत्रों को पकड़ता है, सूत्र रूप में उनकी रचना करता है और फिर उसके इर्द-गिर्द घटना का निर्माण करता है. इन सभी सूत्रों में एकसूत्रता यह मानी जा सकती है कि लगभग सभी सूत्र बैंक के परिवेश से संदर्भित हैं.

हास्य और व्यंग्य का साथ

उपन्यास की भाषा, चरित्र-चित्रण की पद्धति, वाक्यों का विन्यास, उपन्यास का कथ्य आदि इस बात की आवश्यकता महसूस कराते हैं कि इस उपन्यास की आलोचना करने के लिए, इसे समझने के लिए नयी आलोचना दृष्टि की जरूरत है. सुरेश ने उपन्यास में डायरी शैली, पत्र शैली, पौराणिक कथा-रूढ़ियों आदि का प्रयोग किया है.

कथा वर्णन में सुरेश ने हास्य को व्यंग्य से विच्छिन्न नहीं किया है और न ही हास्य, व्यंग्य की गंभीरता को कम करता दृष्टिगत होता है. उपन्यास पढ़ते समय विसंगतियों के विरुद्ध आक्रोश संचित तो होता ही है, साथ ही अनेक स्थलों पर बरबस हंसी भी आ जाती है. हास्य यदि व्यंग्य को कुंद न करे तो वह स्वीकार्य है. 'ब से बैंक' में हास्य अपने-आप में व्यंग्य का सहायक होकर आया है. □

—चर्चित पुस्तक—

ब से बैंक

▣ सुरेश कांत

प्रकाशक : पराग प्रकाशन, कर्ण गली, शाहदरा, दिल्ली-32

मूल्य : 12 रुपये.

बिना रीढ़ का आदमी

'बिना रीढ़ का आदमी' (हंसराज रहबर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली : 6, मूल्य 12 रुपये) उपन्यास लेखक के अनुसार एक रूपक कथा है, जिसमें स्वतंत्रता संग्राम के दौरान के दो महत्वपूर्ण राजनेताओं के चरित्रों का विश्लेषण करते हुए और उनके चरित्रों का विरोधाभास प्रकट किया गया है. गड़बड़ लेखक के यहां यह हो गयी है कि उसने उन दोनों को एक ही घर में, एक ही तरह की सुविधाओं में पैदा और बढ़ा होते दिखाया है, जबकि वास्तविक जीवन में उन दोनों नेताओं के परिवारों में हर दृष्टि से बहुत अंतर मिलता है. यह कमी तभी रह जाती है जब रूपक को ठीक तरह से ग्रहण न किया गया हो. कहानी के विकास के साथ भी लेखकीय पूर्वाग्रह समानांतर चलता है, जिसके कारण पाठक के सामने एक पक्षीय चित्र ही आ पाता है. जहां तक पठनीयता का प्रश्न है, एक खास तरह का पाठक वर्ग, जो ऐतिहासिक व्यक्तित्वों की कमजोरियों को मजे लेकर पढ़ता है, इसमें अभीष्ट मजा पा सकता है. □

अन्य प्रकाशन

- फिल्मी दुनिया की झलकियां—— दो खंड (उपेंद्रनाथ अश्क), नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, मूल्यः प्रत्येक खंड——20 रुपये.
- हर्षवर्धन (चंद्रकांत भारद्वाज), राजेश प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली-51, मूल्य : 20 रुपये.
- अपराजेय (आदित्य दिवारत्नम्), राजेश प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली-51, मूल्य : 35 रुपये.
- नीम चढ़ी गुरबेल (श्रीराम मीना), मिलिंद प्रकाशन, बरारीपुर, छिंदवाड़ा (म.प्र.), मूल्य : 8 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

एक समुद्र प्रश्नों का

पिछले दिनों, साहित्य के सवालों पर बातचीत के लिए, हिंदी के तकरीबन चलीस रचनाकार रतलाम में इकट्ठा थे. 'प्रश्न जो समुद्र हैं' नाम से मध्यप्रदेश साहित्य परिषद ने संजीदगी से एक रचना-संगोष्ठी आयोजित की.

पहले दिन, सुबह का सत्र **'कविता का नया सौंदर्यशास्त्र'** पर कर्णसिंह चौहान के पर्चे से शुरू हुआ. उन्होंने पर्चे में कविता के लिए एक नये वैज्ञानिक सौंदर्यशास्त्र की जरूरत पर बल दिया. बहस के दौरान पर्चे के आधारभूत तथ्यों से कोई बड़ी असहमति नहीं उभरी. जगदंबा प्रसाद दीक्षित ने सौंदर्यशास्त्र से पहले नये सौंदर्यबोध को परिभाषित कर लेने का आग्रह किया. रमेश देव ने कविता के 'लिंग्विस्टिकली ओरिएंटेड' होने पर जोर दिया. चंद्रकांत देवताले ने कहा कि कविता की भाषा, उसके शब्द एक जादू के बिना जिंदा नहीं रहते. प्रमोद वर्मा ने कहा कि जब हम कविता को जादू कहते हैं तब हम अपने आसपास की जिंदगी और समाज से कटकर उसे जादू नहीं कहते.

साजिशों के खिलाफ!

दूसरे सत्र में दो पर्चे पढ़े गये . **'रचना और पाठक : बदलते रिश्तों में संप्रेषण की समस्या'** विषय पर अपने पर्चे में प्रमोद वर्मा ने रचनाकार के नाते रचना और पाठक के बीच की जमीन की पड़ताल की. 'साहित्य और परिवेश' विषय पर ओमप्रकाश मेहरा का पर्चा भी पढ़ा गया. बहस शुरू करते हुए विभुकुमार ने शिकायत की कि हर बार पाठक से लेखक के झरोखे तक आने का दुराग्रह क्यों किया जाता है? राजेंद्र शर्मा ने रचना की बाबत पाठकों के विज़न और खुद रचनाकार के विज़न के टकराव में संप्रेषण की गुंजाइशें खोजीं. कर्णसिंह चौहान ने सामान्यजन को अपनी सही सांस्कृतिक निधि तक न पहुंचने देने के लिए देश में चल रही सजिशों के खिलाफ एक सांस्कृतिक लड़ाई की जरूरत पर जोर दिया. श्याम व्यास ने मास-मिडिया के उपयोग की स्वस्थ संभावनाओं की तरफ इशारा किया.

लेखक कब बनें?

तीसरे सत्र में नवल किशोर के निबंध **'कविकर्म और जीवनकर्म'** पर बहस हुई. नवल किशोर मौजूदा हालातों में जीवनकर्म और रचनाकर्म को एकदम साथ जोड़कर देखने के विरुद्ध थे. बहस की शुरूआत में श्यामसुंदर निगम ने कहा कि रचना, रचनाकार के व्यक्तित्व और उसकी आंतरिक सक्रियता के बगैर सक्षम हो ही नहीं सकती. राजेश जोशी भी एकमत थे कि रचना और जीवन में विरोधाभासों के चलते, रचना कभी क्लासिक नहीं हो सकती. रमेश बख्शी का कहना था कि कि जब तक हम दुनिया की पूरी जद्दोजहद से नहीं गुजर लेते तब तक लेखक वगैरह होना सब फिजूल है.

आखिरी सत्र में **'कविता-साहित्य में आधुनिकता और उसकी अवधारणा'** को लेकर बातचीत हुई. चंद्रकांत देवताले ने अपने पर्चे में छद्म आधुनिकता के प्रति आगाह किया और उन संदर्भों का हवाला दिया, जिनके जरिये हमारे साहित्य में तथाकथित आधुनिकता का प्रवेश हुआ. अपने पर्चे में राजेश जोशी का कहना था कि आज की कविता में और उससे बाहर भी आधुनिक होने का अर्थ सामाजिक सच्चाई के निकटतर होते जाना है. बहस में शरीक रचनाकार आधुनिक संदर्भ में इन सवालों के इन विचारों पर प्रायः सहमत थे. नवल किशोर का सवाल था ——समाजशास्त्रीय संदर्भों में वांछित होते हुए भी लेखन में आधुनिकता एक फोर्स के रूप में क्यों नहीं आयी? प्रत्युत्तर में चंद्रकांत देवताले ने कहा कि कहीं भी आधुनिकता से इंकार करने का मतलब एक अंधेरी गुफा में भाग जाना होगा.

बहसों में राजेंद्र अवस्थी, रमाकांत श्रीवास्तव, विलास गुप्ते, मालती परूलकर, अशोक झा, नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी, प्रमोद त्रिवेदी, दिनकर सोनवलकर, प्रह्लाद अग्रवाल व कई प्रखर युवा लेखक शामिल हुए. साहित्य के सवाल आसानी से हल नहीं होते. इतने रचनाकारों का एक साथ इतने गंभीर सवालों पर सोच-विचार में मुब्तिला होना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है. □

● संजीव क्षितिज

● प्रश्नों के समुद्र में विचार-विमर्श

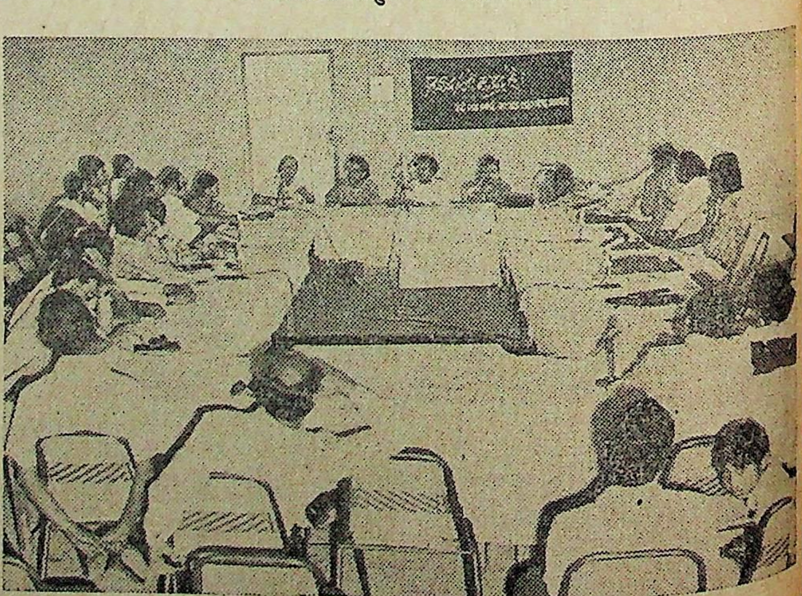

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचंद तो सबके थे, जनाब!

'राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ' की सागर (म. प्र.) शाखा द्वारा 'प्रेमचंद : साहित्य और विचारधारा' विषय पर एक दो दिवसीय सम्मेलन किया गया.

"प्रेमचंद ने प्रकृतवाद के बजाय आलोचनात्मक यथार्थवाद को अपनी कृतियों का विषय बनाया" डा. नंदकिशोर नवल ने उद्घाटन भाषण में कहा.

अध्यक्ष श्री ज्वाला प्रसाद ज्योतिषि ने प्रेमचंद को श्रेष्ठ लेखक के अतिरिक्त महान स्वतंत्रता सेनानी भी बताया. विशेष वक्तव्य में श्री धनंजय वर्मा ने कहा, "जिनकी आवाज कोई नहीं सुनता, प्रेमचंद उनकी आवाज है." केवल गोस्वामी का कहना था, "प्रेमचंद पहले लेखक थे जिन्होंने समृद्ध लोक साहित्य परंपरा में समकालीन समस्याओं को उसके माध्यम से व्यक्त किया!" श्याम कश्यप का विचार था, "प्रेमचंद का यथार्थवाद, पूंजीवादी आलोचनात्मक यथार्थवाद की सीमाओं को तोड़कर यथार्थवाद के उस आयाम पर पहुंच जाता है, जहां से समाजवादी यथार्थवाद की यात्रा शुरू होती है.

प्रथम सत्र का विषय था—'प्रेमचंद का कथा साहित्य : परंपरा और प्रगति'. श्रीमती दिवाकर ने प्रेमचंद के उपन्यासों से अनेक उद्धरण देकर उनके मानवीय पक्ष को उजागर किया. परिचर्चा का आरंभ करते हुए श्याम कश्यप ने रचनाओं तथा लेखक के विश्वदृष्टिकोण और कला-

बायें से : डा. प्रतापचंद्र, कपिल तिवारी

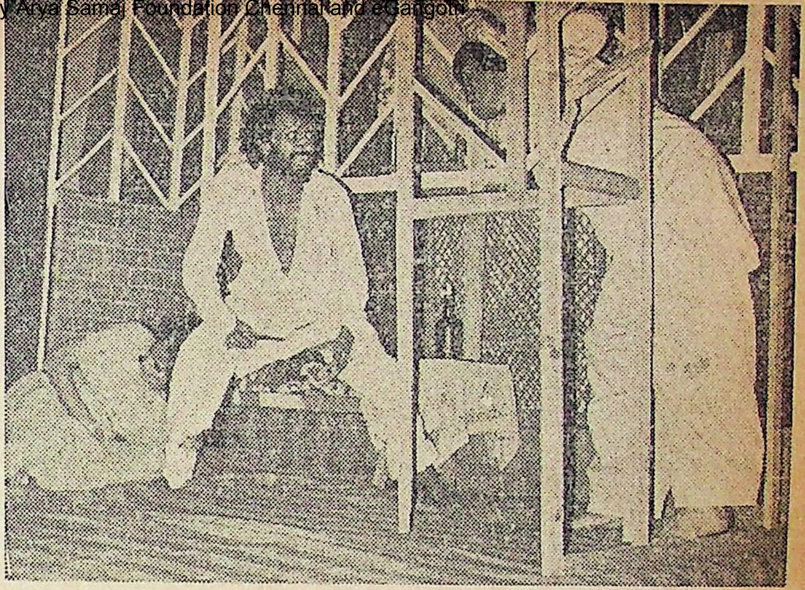

कानपुर में 'श्रृंगार संध्या' के सहयोग से 'संध्या' द्वारा खेले गये विजय तेंदुलकर के नाटक 'बेबी' का एक दृश्य—बायें से (रश्मि अरोड़ा) राघव (एस. एम. अतीक) और शिवाप्पा (जफर इकबाल)

कृति के संबंधों पर प्रकाश डाला. **प्रवीण अटलूरी, बलभद्र तिवारी, वीरेंद्र मोहन** तथा **कपिल तिवारी** ने प्रेमचंद की कृतियों पर प्रकाश डालते हुए कहा, "महान कला वही है जो देर तक पाठक को झकझोरती रहे तथा सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे और प्रेमचंद का साहित्य इस कसौटी पर खरा उतरता है." केवल गोस्वामी (अध्यक्ष) ने कहा, "प्रेमचंद की विषय वस्तु विविध और विस्तृत है! उन्होंने अपने समय के लगभग सभी आर्थिक, सामाजिक, राजनितिक और नैतिक प्रश्नों को अपने अमर पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है! दूसरे अध्यक्ष डा. प्रतापचंद्र ने कहा, "रोग और निदान दोनों ही प्रतिवद्ध लेखक में मौजूद रहते हैं." गोष्ठी का संचालन श्री धनंजय वर्मा ने किया.

क्या प्रेमचंद का पतन हुआ ?

"प्रेमचंद की विचारधारा और आस्था की खोज' दूसरी गोष्ठी का विषय था.

महेंद्र फुसकेले, प्रमोद पांडेय, राजेश्वर सक्सेना ने प्रेमचंद को भारतीय नवजागरण का महत्वपूर्ण कार्यकर्ता माना. डा. विजय बहादुर सिंह ने कहा, 'विचारधारा उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी कि रचना. प्रेमचंद का निरंतर ह्रास होता गया और 'पूस की रात', 'कफन' और 'गोदान' जिन्हें प्रेमचंद की श्रेष्ठ कृतियां सिद्ध करने की कोशिश की जा रही है. दरअसल, यह घोर निराशावादी और बुढ़ापे के कारण अंधकारमय दिमाग की उपज हैं." सर्वश्री केवल गोस्वामी, देवीशरण, विनोद कुमार, चंद्रभूषण ने श्री सिंह की टिप्पणी का विश्लेषण करते हुए, इसे न केवल प्रेमचंद के विरुद्ध एक कुत्सित प्रचार मात्र माना अपितु प्ररिवर्तनकारी साहित्य के विरुद्ध एक षड्यंत्र माना. डा. कमला प्रसाद ने संपूर्ण विषय को समेटते हुए कहा, "प्रेमचंद को जबरन किसी खेमे में ढकेलने या स्थापित-विस्थापित करने से पूर्व उनकी रचनाओं को गंभीरतापूर्वक पढ़ना और उस आधार पर निष्पक्ष विचार व्यक्त करना ही श्रेयस्कर है. दयानारायण निगम को 6 जुलाई, 1918 को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था—"मैं अब बोल्शेविक उसूलों का कायल हो गया हूं. आपका क्या ख्याल है?" इन पत्रों, टिप्पणियों तथा प्रेमचंद के साहित्य की ओर से यदि कोई आंख मूंद ले तो उसके साथ किस भाषा में संवाद संभव हो सकता है?"

अंत में जबलपुर की नाट्य संस्था 'विवेचना' द्वारा प्रसिद्ध व्यंग्य नाटक 'दरिंदे' (हमीदुल्ला) प्रदर्शित किया गया. □

● विमल शर्मा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

आइए सारिका के साथ दीवाली मनाइए

इस बार भी दीवाली में हमेशा की तरह हम मिठाई खायेंगे, पटाखे छुटायेंगे, बम फोड़ेंगे, फुलझड़ियां उड़ायेंगे, अनार बिखरायेंगे, बर्तन खरीदेंगे, कपड़े सिलवायेंगे, जुआ खेलेंगे, पूजन करेंगे! . . . हम करें, कुछ भी करें, मगर जरूरी है कि हालात को देखते हुए पहले एक सवाल खुद से ही करें—

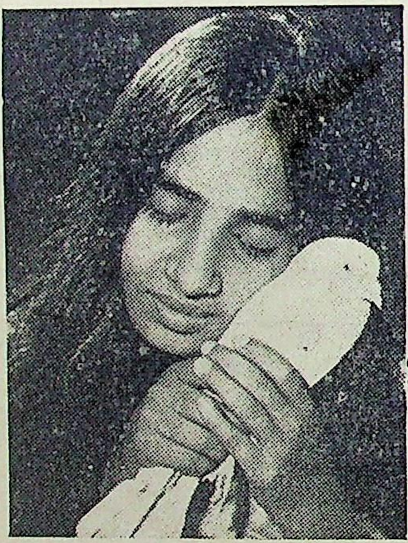

छाया : ज्ञान दीक्षित

क्या यह सच है कि पहले हम त्यौहार मनाते थे परंतु अब सिर्फ निभाते हैं?

त्योहार की उन मौजिया बातों और अब आकर खर्च के नाम पर लक्ष्मी की घातों के मीजान में वक्त की सही पहचान का दिलचस्प जायजा देने वाला 'सारिका' का

दीपावली विशेषांक

जिसमें देश भर के प्रख्यात कथा-लेखकों की रचनाएं एक साथ आपको पढ़ने को मिलेंगी—

- "जब तक चीनी पांच रुपये किलो मिली, वह लश्टम-पश्टम सपने देखता रहा. फिर चीनी साढ़े पांच रुपये किलो हुई. सात रुपये किलो हुई. पंद्रह रुपये किलो हो गयी . . . नींद उड़ गयी और जब नींद ही उड़ गयी तो कोई सपना क्या देखे, ठेंगा!" मिठाई के जगमगाते त्योहार पर जिंदगी की हकीकतों से साक्षात्कार करवाती—राही मासूम रजा की कहानी—**सपनों की रोटी.**

- **ऊं श्रीं ह्रीं** अर्थात् तंत्र मंत्र का अंदरूनी किस्सा : राकेश वत्स **ले चल रहे हैं उन अघोरियों और तंत्र साधकों की रहस्यमय दुनिया की तरफ जो दीवाली की रात सिद्धि की होड़ में लगी हुई** होती है.

- **काकभुशुंडि गरुड़ से बोले . . .** लेकिन तब बोले जब उनसे गरुड़ ने पूछा कि प्रभु, गैलीलियो को अपना कथन वापस क्यों लेना पड़ा, और सुकरात को विषपान क्यों करना पड़ा था? उत्तर में काकभुशुंडि ने सुनाया : **तम तोम का नारा उर्फ भीड़ का सत्य—काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद** का एक अधुनातन अध्याय जिसे प्रस्तुत कर रहे हैं—**उमाकांत मालवीय**

- दीवाली की इन शुभकामनाओं के साथ कि . . . भगवान किसी को बेरोजगारी न दिखाये और **रवींद्रनाथ त्यागी** जैसे किसी तानेबाज को कहीं भरती के सिलसिले में इंटरव्यू लेने न भेजे!—प्रस्तुत है उनकी ताजा व्यंग्य रचना—**भरती : मेरा पहला अनुभव**

- व्यंग्यकारों की निगाह से न विष्णु बचते हैं न लक्ष्मी. खासतौर से तब जब 'कुर्सी' का चक्कर हो क्योंकि "कुर्सी कभी सुहागिन नहीं बन पाती. वेश्या की तरह उसे थोड़ी-थोड़ी देर में नये-नये चेहरों के सम्मुख समर्पित होना पड़ता है!" . . . विष्णु और लक्ष्मी को नये अर्थों में रूपायित करती **विनोद शंकर शुक्ल** की व्यंग्य कथा—**कुर्सी महाठगिनी हम जानी . . .**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाही आकर्षण

शिवलाल को मलाई से बहुत इश्क था. वह शाम को खाना खाने के बाद सड़क तक आता और दो सौ ग्राम मलाई के ऊपर सौ ग्राम चीनी मिलाकर अम्मा के पास बैठकर ही मलाई खाता. अम्मा के बंधे-बंधाये ग्राहक थे. एक मरता तो दो पैदा हो जाते!

अजीबो-गरीब चरित्रों की सलामती का दस्तावेज——रवींद्र कालिया का नया उपन्यास 'खुदा सही सलामत है!' जिसकी हुस्नाबाई से आप १६ अगस्त, ८० के अंक में मिल चुके हैं. अब मिलिए——शिवलाल से.

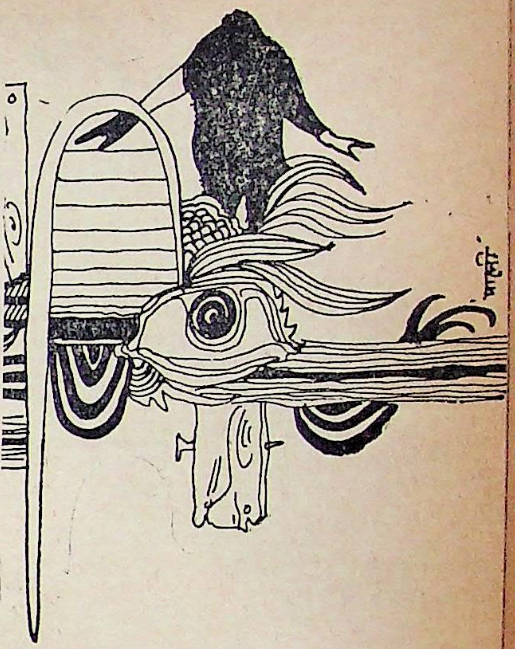

...रिका की कथा-प्रतियोगिता में ...दनी' को तृतीय पुरस्कार मिला था. ...ी युवा रचनाकार प्रियंवद की ताजा ...ना——"मेरा नौकर कहता है, जो ...ों का खून पीता है, उसके होंठ ...कुल लाल हो जाते हैं, तुम्हारी ...!" यम और यमी की रोमांचक ...कहानी की आधुनिक गाथा——...ठों के नीले फूल!'

...लो सोचती :
...क्या धान इसीलिए कटते हैं?
...क्या सरसों इसीलिए फूलती है?
...क्या मर्दों के पास कोई नदी नहीं होती?
...सोचती लेकिन सोचा हुआ हमेशा ...कहां पाता है?" अंधेरे में ठहरे नारी ...की अंतर्व्यथा——अक्षय उपाध्याय ...कहानी——सुलो और उसकी नदी

...जितने भी भूखे और अतृप्त ब्राह्मण ...ते हैं, सब पिशाच बनते हैं!"... ...अतृप्त क्यों रहने लगी. मरने से पहले तुम्हें ब्राह्मणी रहने ही नहीं दूंगा!"... "क्या करोगे?"... "देवी बना दूंगा"——गांव के भोले-भाले नाजुक एहसासों से लबरेज प्रेम और सामाजिक आतंक की कहानी——फांसी——मधुकर गंगाधर की कलम से.

किस्सा कोताह... तो यह है गॉडफादर!

वह राम बनना चाहता था लेकिन 'रक्ष संस्कृति' का सबसे बड़ा पंडित बनकर रह गया. आखिर क्या कारण था कि पूजो ने गॉडफादर के रूप में एक नये रक्ष-संसार की सृष्टि की? चाहे पौराणिक पातालपुरी का अहिरावण हो या आधुनिक पातालपुरी कहे जाने वाले अमरीका का रावणी संस्करण गॉडफादर, दोनों में फर्क क्या है? आइए, देखें, द्रोणवीर कोहली की जानकारी का लाभ उठाते हुए कि... गॉडफादर के अंदर है क्या?

कुरु कुरु स्वाहा उर्फ पूजा और पलीता

...कुरु कुरु स्वाहा' लिखा **मनोहर श्याम जोशी** ने, और पढ़ा **अजितकुमार** ...और मन में सवाल उठे तो उन्होंने पटक दिये जोशीजी के सामने, ...हरे और दिलचस्प सवाल, लेकिन उतने ही गहरे और दिलचस्प ...जवाब दिये जोशीजी ने. साथ में **नेत्रसिंह रावत** की समीक्षा और ...उपन्यास पर **व्यंग्यकार किट्टू** का चुलबुला और ठेठ खत!

● अनजानी इतिहास कथाएं

अवध के चमन का दीदावर

'अवध के चमन का दीदावर' मौलवी अहमद सलीम, जो ब्रितानी खौफ के मातमी अंधेरों के बीच अपनी बहादुरी और हिम्मत के सहारे नयी रोशनी का मसीहा बन गया——**एक खौफनाक तवारीखी हादसे की कहानी——बाला दुबे की जबानी.**

सारिका

घर-परिवार और पुस्तकालय की पहली जरूरत

नवंबर—80

अंक——एक

सैंकड़ों पत्रिकाओं में बेहतर, बेजोड़, सुरुचिपूर्ण, ज्ञानवर्धक, रोचक और मनोरंजक

केवल दो रूपये में एक किताब, जिसे आप कभी भी पढ़ सकते हैं

अपने एजेंट को आज ही याद करवाना न भूलें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने स्टेशन को साफ-सुथरा रखें

इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि साफ-सुथरा वातावरण व्यक्ति के चरित्र की अभिव्यक्ति करता है और हमारी प्रवृति को बनाता है. ऐसे वातावरण से आनंद-ही-आनंद मिलता है.

हम अपने घरों को खुला और हवादार रखते हैं. तब इस बात को सार्वजनिक स्थानों के लिए क्यों न लागू किया जाए ?

रेलवे प्लेटफार्मों, प्रतीक्षालयों, सवारी डिब्बों और वास्तव में किसी भी स्थान, जहां लोग अधिकांशतया इकट्ठे होते हैं, यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, कि इनके आस-पास के वातावरण को साफ-सुथरा रखा जाए.

हमने रेलों पर स्वच्छता अभियान चलाया है, जिसके बहुत ही अच्छे परिणाम निकले हैं. रेलें अब अधिक आकर्षक लगने लगी हैं. फिर भी, इस दिशा में और अधिक सुधार किए जाने की गुंजाइश है. हम इसमें सुधार लाने के लिए भरपूर प्रयास करते रहेंगे.

आप भी रेलवे की सहायता कर सकते हैं. इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आपके आस-पास के क्षेत्र में कोई गंदगी नहीं है, आप स्टेशन और निकटवर्ती स्थान को साफ-सुथरा रखें. इस प्रयोजन के लिए रेलवे के सफाई कर्मचारियों की सेवाएं प्राप्त की जा सकती हैं. वे आपकी सेवा के लिए हमेशा तैयार रहेंगे.

आपको सिवाय कूड़ादान के, कूड़ा आदि इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिए. आप की ओर से दिए गए थोड़े-से सहयोग से भी हम आप को बेहतर सेवा प्रदान कर सकते हैं.

रेलवे आप ही की सम्पत्ति है

इसे साफ रखिए

उत्तर रेलवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

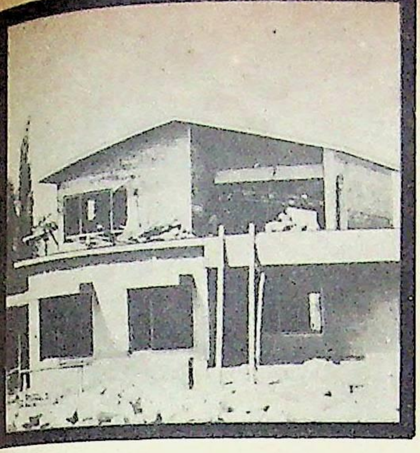

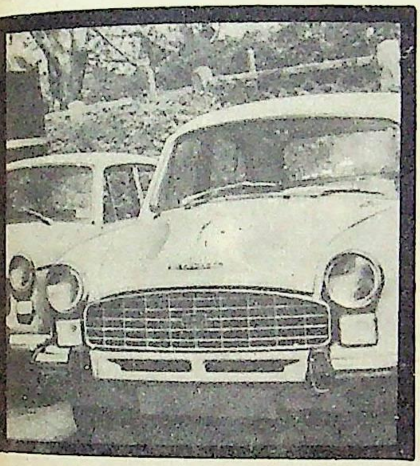

आप और कौन-कौन से खर्चों के लिए योजना बना रहे हैं?

केनरा बैंक आपकी योजनाएँ सफल बनाता है.

भविष्य के लिए योजनाएँ बनाकर और बचत कर आप जो चाहें खरीद सकते हैं. केनरा बैंक की **कामधेनु जमा योजना** की मदद से आप भविष्य के खर्चों की योजना बना सकते हैं.

आप कार, स्कूटर या अपना घर लेना चाहते हैं ?
बच्चों की शिक्षा या उनके विवाह के लिए चिन्तित हैं ?
तो **कामधेनु योजना** आपके काम आयेगी... आपका धन बढ़ाकर ज्यादा रकम दिलायेगी.

इसमें आपको अपनी ज़रूरत की रकम का छोटा-सा हिस्सा ही जमा करना होगा. बस **कामधेनु** में जमा की जानेवाली रकम और अवधि का फैसला आपको करना है. आपको ब्याज पर ब्याज मिलेगा... हर महीने अच्छी कमाई होगी और रकम दूनी से भी ज्यादा हो जायेगी.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं :
विद्यानिधि, निरंतर और बालक्षेम

कामधेनु जमा योजना

केनरा बैंक

(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)
देश भर में १२०० से भी अधिक शाखाएँ

maa CB 5 Hin B 80

बेनेट, कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : पी. राम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर, मद्रास-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पंजीयत सं-D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सही रंग-छटा पाना है जितनी बड़ी बात, सही रंग-योजना बनाना उतनी ही बड़ी बात.

आइए, नेरोलॅक पेण्ट्स से रंगों की अदा जानिए.

रंगों की असीम शक्ति होती है. अगर आप उनका मूलभूत स्वभाव समझ लें, उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव जान लें और उनका आपसी संबंध पहचान लें, तो आप अपने घर के लिए एक प्रभावशाली रंग-योजना बना सकेंगे.

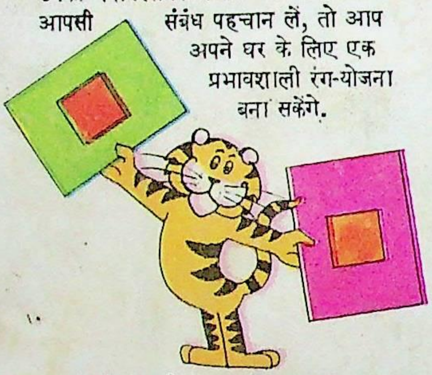

रंगों के बारे में कुछ जरूरी बातें :

1. कुछ रंग गर्म होते हैं (जैसे लाल, पीला, नारंगी) तो कुछ ठंडे (जैसे नीला, हरा, बैंगनी).

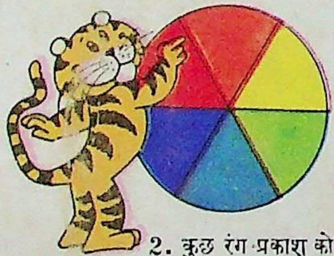

2. कुछ रंग प्रकाश को परावर्तित करते हैं (सफेद और पेस्टल) तो कुछ अपना लेते हैं (गहरे रंग).

3. जैसी रोशनी वैसे रंग ! बड़ी रोशनीदार जगहों में गहरे रंग ज्यादा चमकते हैं जब कि पेस्टल रंग कृत्रिम रोशनी में फीके लगते हैं.

4. हल्के रंगों से कमरे बड़े लगते हैं और गहरे रंगों से छोटे.

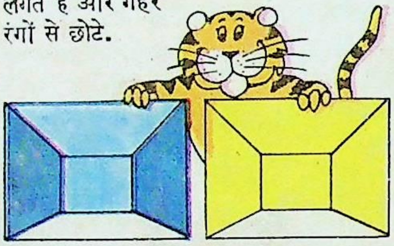

रंगों का मजा लीजिए ! अनगिनत चुनाव ! यह होगा आपका बनाया, आपका मनपसंद प्रभाव. बस इतना याद रखिए कि रंगों का ताल-मेल केवल दीवारों, लकड़ी व धातु की सतहों तक ही सीमित नहीं. रंगों के प्रभाव में फ़र्निशिंग का भी हाथ रहता है.

हमारी नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका **'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें'** की मुफ्त प्रति के लिए लिखिए. इसमें दिखाया गया है कि रंगों के चुनाव से कमरे को सही निखार कैसे मिलता है. नीचे दिए कूपन को भरकर फौरन डाक से भेज दीजिए.

नेरोलॅक पेण्ट्स

नेरोलॅक लगाइए ! रंग में आइए !!

कृपया मुझे नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका 'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें' की एक हिंदी प्रति भेज दीजिए.

नाम ------------------------------

पता ------------------------------

------------------------------ पिन कोड ----------

गुडलॅस नेरोलॅक पेण्ट्स लिमिटेड
बिक्री विभाग, पी. ओ. बॉक्स नं. 16322, बम्बई-400 013.

ULKA-GNP-168 HIN
168 (P)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar